दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० २४९५ तंत्री-पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार, भावनगर वर्ष २५ अंक नं० २

सम्यग्दर्शन की महिमा

संसार में मनुष्यपना दुर्लभ है; परंतु सम्यग्दर्शन तो उससे भी दुर्लभ है। मनुष्यपना प्राप्त करके भी सम्यक्त्वहीन जीव पुनः संसार में ही भटकते हैं... परंतु सम्यग्दर्शन ऐसी वस्तु है कि एक क्षण भी उसकी प्राप्ति करनेवाला जीव अवश्य मोक्ष प्राप्त करता है; इसलिये ऐसे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का उपाय करना, वही इस दुर्लभ मानवजीवन का महान कर्तव्य है, और उसके लिये ज्ञानीधर्मात्माओं का सीधा सत्समागम सबसे बड़ा साधन है। जिन्हें सम्यग्दर्शन प्रगट करके इस असार संसार के जन्म-मरण से छूटना हो... और पुनः नौ महीने तक माता के पेट में न रहना हो, उन्हें सत्समागम से आत्मरुचिपूर्वक सम्यग्दर्शन का अभ्यास करना चाहिये।

['सम्यग्दर्शन' (गुजराती) से]

चारित्र

ज्ञान

दर्शन

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

जून १९६९ वार्षिक मूल्य ३) रुपये (२९०) एक अंक २५ पैसा [ज्येष्ठ सं० २४९५

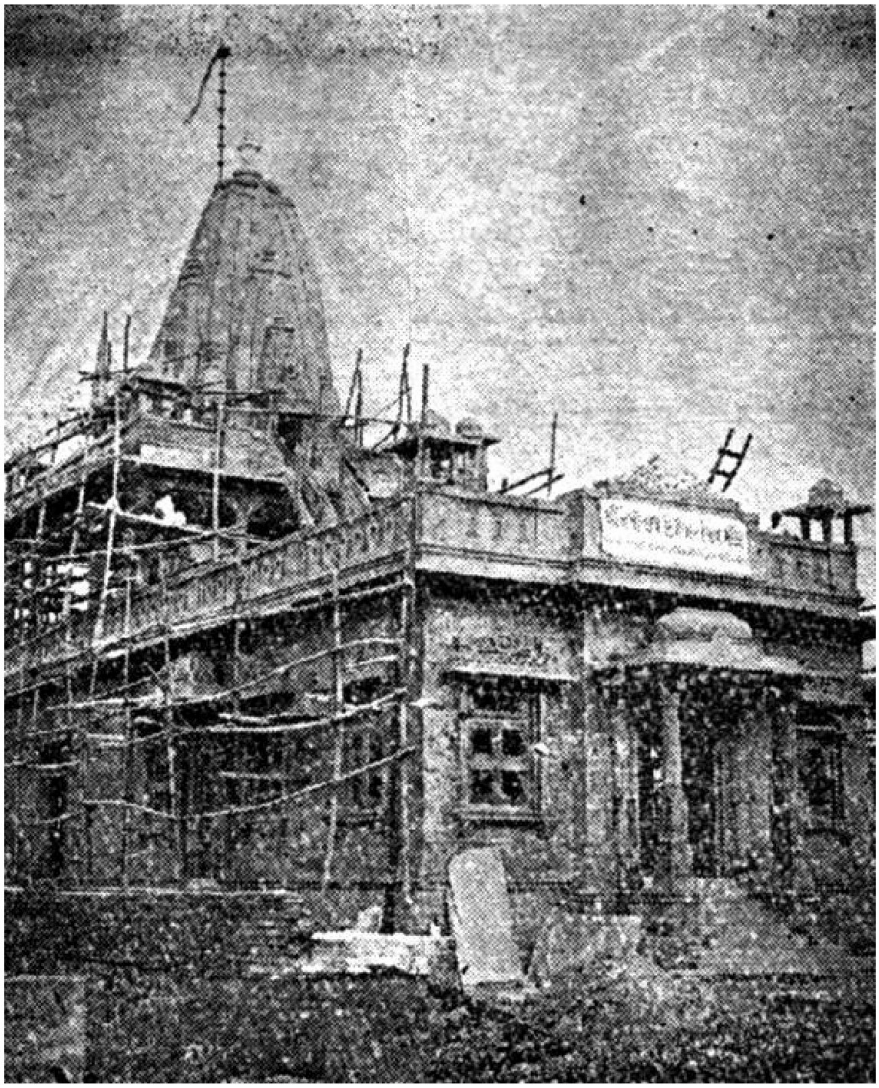

श्री दिगम्बर जिन मंदिर : घाटकोपर (बम्बई)

जिसमें ऊपर के भाग में चौबीस तीर्थंकर भगवंतों की तथा नीचे सीमंधर भगवान एवं नेमिनाथ भगवान की प्रतिष्ठा गत वैशाख में हुई। मलाड का जिनमंदिर भी ऐसा ही भव्य है; उसमें ऊपर के भाग में सीमंधरादि बीस भगवंत तथा नीचे आदिनाथ भगवान विराजमान हैं।

शाश्वत् सुख का मार्गदर्शक मासिक-पत्र

आत्मधर्म

संपादक : (१)श्री ब्र० गुलाबचंद जैन (२) श्री ब्र० हरिलाल जैन

जून : १९६९ ☆ ज्येष्ठ, वीर नि०सं० २४९५, वर्ष २५ वाँ ☆ अंक : २

श्रुत पंचमी

'णमो लोए सव्व अरिहंताणं'—ऐसे मंगलपूर्वक श्रुतपंचमी के मंगल प्रवचन का प्रारंभ करते हुए गिरनारवासी श्री धरसेनाचार्यदेव का स्मरण करके पूज्य स्वामीजी ने श्रुत का इतिहास बतलाया। श्रुत का प्रवाह अछिन्न रखनेवाले वे धरसेन और पुष्पदंत, भूतबलि मुनिवर वीतराग थे। उनके रचे हुए षट्खंडागम के मंगलाचरण में 'णमो लोए सव्व अरिहंताणं'—ऐसा कहकर सर्व लोक में वर्तते हुए त्रिकालवर्ती सर्व अरिहंतों को नमस्कार किया है। अहो! ज्ञानकी कितनी विशालता! अनंत अरिहंत-सिद्धों को लक्ष में लेनेवाला ज्ञान कितनी शक्तिवाला है! ऐसे मंगलपूर्वक षट्खंडागम जिनवाणी की रचना हुई और अंकलेश्वर में दो हजार वर्ष पूर्व उसका महोत्सव हुआ। आज वही ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी का दिन है।

वह श्रुत ऐसा बतलाता है कि आत्मा चिदानंदस्वरूप है, उसमें परभावों का कर्ताकर्मपना नहीं है। ऐसे आत्मा को जानना, वह श्रुत का रहस्य है।

कानजीस्वामी

अद्‌भुत व्यक्तित्व

[नई दिल्ली के 'नवभारत टाइम्स'
ता. १४-५-६९ में से साभार उद्‌धृत]

कानजीस्वामी, एक जीति-जागती जीवन-जोत, आत्म-अभ्युदय की साकार मूर्ति, सारे सौराष्ट्र में जिनकी आत्मक्रान्ति की धूम है, पर शेष भारत भी जिनके प्रकाश से वंचित नहीं।

सुंदर सलोना शरीर, देदीप्यमान आभा, सुखद भावमंडल, वाणी में ओज, जो भी सरल हृदय से सन्मुख हुआ, उस ही की ग्रंथि खुली, ऐसा शायद ही कोई हो कि जिसने सरलता से सुना तो हो, पर उसे शांति न मिली हो।

ऐसा भी आज तक नहीं हुआ कि किसी की बातों को सभी ने सरलता से मान लिया हो, कुछ विरोधी सभी के होते हैं, इनके भी हैं, पर उनके लिए स्वामीजी के हृदय में बड़े सुंदर विचार हैं, ये श्रद्धालु श्रावकों से कहा करते हैं, 'तुम्हें विरोधियों से घृणा या क्रोध न करना चाहिये, इनमें भी तुम्हारी ही तरह भगवान बसते हैं, इनमें थोड़ी नासमझी है, जब समझ जायेंगे तो स्वयं ही सही रास्ते पर आ जायेंगे, साथ ही तुम्हें भी अपनी समझ के लिये अहंकार न करना चाहिये, बस सहज रूप में अपनी दृष्टि अप्राप्त की ओर रख, बढ़ते जाना चाहिए।'

एक बार एक त्यागी ब्रह्मचारी इनका पक्ष लेकर किसी विरोधी भाई से सवाल-जवाब और मुकदमेबाजी की ऊहापोह में पड़ गये, इनके सामने बात आयी तो वे बोले, 'भाई, समय का समागम तो बहुत थोड़ा है, न जाने कब आयु समाप्त हो जाये, इस मूल्यवान समय को यों हल्की बातों में उलझकर नष्ट न करो, बन सके तो प्राप्त समय को अपने आत्मकल्याण में प्रयोजित कर लो।'

ये सर्वसाधारण को बहुत ही सरल भाषा में समझाया करते हैं, इनका कहना है सबसे पहले तुम यह मानो कि 'तुम हो' तुम्हारा स्वतंत्र अस्तित्व है। ये कैसे हो सकता है कि जो वस्तुएँ दिखती हैं, वे तो हैं, और जो उन्हें देखनेवाला है 'वह नहीं'? इसलिये आकाश, समय और पुद्गल की तरह ही तुम्हारे में स्वतंत्र सत्ता है।'

अब जिन्होंने अपनी सत्ता स्वीकार कर ली, उनसे यह कहते हैं, 'तुम में जो विकार चलते दिखते हैं, उनके दोषी तुम स्वयं ही हो, क्योंकि अगर तुम दोष का कारण औरों को मानोंगे तो तुम उन्हीं में फेर-फार करने का प्रयत्न करते रहोगे और जब सब दोषों के जिम्मेदार अपने को ही मान लोगे, तो अपने को ही ठीक करने के प्रयत्न में लग जाओगे, इसलिये दोष दूसरे निमित्तों को न दो, दोष तुम्हारा और केवल तुम्हारा ही है, इसके माने बिना आगे गति नहीं।'

अब जिन्होंने माना दोष हमारे ही हैं, शत-प्रतिशत हम ही उनके जिम्मेदार हैं, उनसे आप कहते हैं—देखो, तुम्हारे वास्तविक स्वभाव में दोष नहीं, यदि दोष स्वभाव का हिस्सा होते तो उसमें से वह निकल नहीं सकते थे, यदि तुम अपने निज के वास्तविक स्वभाव की ओर दृष्टि दोगे तो यह शनैः शनैः स्वतः निकलते जायेंगे, और तब शुद्ध सोने के समान निखर आयेगी तुम्हारी निर्मल आत्मा।

जिस तरह सोने को तपाने से उसका मैल निकल जाता है, उस ही तरह दर्शन-ज्ञान और चारित्ररूप धर्म अंगीकार करने से आत्मा निखरती है।

इन महापुरुष का जन्म आज से ७९ साल पहले वैशाख सुदी दूज के दिन सौराष्ट्र के उमराला गाँव में, शाह मोतीचंद के घर माता उजमबा की कोख से हुआ था।

इनके उपदेश सभी जातियों और प्रदेशों के लोगों के लिये समान हैं, यही कारण है, इनके आश्रय में आये लोगों में सभी जातियों और प्रदेशों के लोग होते हैं, उनमें भाषा भेद का कोई झगड़ा नहीं, सभी प्रेम की डोर में बँधे समानता से धर्म साधन करते हैं।

— सैलानी

तुम्हारे पग-पग पर गुरुदेव!
बह रही आतमरस की धार!

[५]

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा-महोत्सवों के निमित्त गुरुदेव ने गत फाल्गुन कृष्णा छठ को सोनगढ़ से विहार किया... अहमदाबाद और रणासण में भव्य महोत्सव हुए; बीच में कुछ दिन सोनगढ़ विश्राम करके गुरुदेव राजकोट पधारे और वहाँ से विहार करते हुए वैशाख कृष्णा ११ तारीख १२-४-६९ को बम्बई नगरी में पधारे। बम्बई में वैशाख शुक्ला दूज को उनका ८० वाँ जन्मोत्सव रत्नचिन्तामणि-महोत्सव के रूप में उल्लासपूर्वक मनाया गया, तथा मलाड और घाटकोपर के जिनमंदिरों में प्रतिष्ठा हेतु पंचकल्याणक-प्रतिष्ठा महोत्सव हुआ। उसका विस्तृत वर्णन आप गतांक में पढ़ चुके हैं। अब, इस अंतिम लेख में आप बम्बई से सोनगढ़ तक की यात्रा का वर्णन पढ़िये।

वैशाख शुक्ला अष्टमी को जिनेन्द्र भगवंतों की प्रतिष्ठा हुई; तत्पश्चात् जिज्ञासुओं की भावनाद`खकरत र्नि दनत कअ ौरप्रवचर्न कये व ैशाखश ुक्लाग यारसके ि दनद ादर जिनमंदिर की प्रतिष्ठा को पाँच वर्ष पूर्ण होने से गुरुदेव वहाँ पधारे और पूज्य बेनश्री बेन ने सामूहिक पूजन कराया। जिनेन्द्रदेव की रथयात्रा भी निकाली गई। मंदिर के पास आँगन में गुरुदेव ने करीब १५ मिनिट तक मंगल-प्रवचन किया था। एक दिन झवेरी बाजार के मंदिर में भी पूज्य गुरुदेव ने दस मिनिट तक प्रवचन किया था। इसी प्रकार मलाड तथा घाटकोपर के जिनमंदिरों में भी गुरुदेव ने मंगल-प्रवचन किये थे। एक दिन बोरीवली स्थित भगवान

आदिनाथ तथा भरत–बाहुबली की विशाल खड्गासन प्रतिमाओं का अवलोकन करने पधारे थे। नगर से दूर एकांत वातावरण में नेशनल पार्क के सामने पिता–पुत्रों की त्रिपुटी मानों ध्यान में खड़ी है, जो अत्यंत मनोज्ञ दृश्य है। अभी इन प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा बाकी है।

—इसप्रकार बंबई में २४ दिन तक विविध कार्यक्रम चलते रहे। तारीख ५–५–६९ को मक्सीजी में प्रतिष्ठा के हेतु पूज्य स्वामीजी बंबई से वायुयान द्वारा इंदौर पधारे। बंबई के शांताक्रूज विमानगृह पर करीब डेढ़ हजार लोगों ने स्वामीजी को विदा किया। स्वामीजी के साथ वायुयान में करीब ४० मुमुक्षु भाई–बहिन इंदौर गये थे। पूज्य स्वामीजी के साथ १२००० फीट की ऊँचाई पर १७५ मील की गति से उड़ते हुए एवं भक्ति करते हुए मुमुक्षुओं के आनंद काप ारन हींथ । ाउ सस मर्या वमानम ें श्र ीकु न्दकुन्दाचार्यदेवक ी ि वदेहक्षेत्रय ात्राए वं चारणऋद्धिधारी वीतरागी संतों का स्मरण होता था। गगनविहार करते हुए मार्ग में समुद्र एवं विशाल लंबी–पतली दिखायी देनेवाली नर्मदा–ताप्ती नदियाँ अनेक ग्राम–नगरों के खिलौने जैसे मकान एवं पृथ्वी का रमणीय दृश्य देखते–देखते तथा संतों का स्मरण करते–करते ठीक सवा पाँच बचे इंदौर पहुँचे; जहाँ सेठ श्री राजकुमारसिंहजी के नेतृत्व में सैकड़ों मुमुक्षुओं ने पूज्य स्वामीजी का हार्दिक स्वागत किया और इन्द्र–भवन के शांत वातावरण में गुरुदेव को उतारा।

दूसरे दिन ज्येष्ठ कृष्णा पंचमी को प्रात:काल काँच के मंदिर में विराजमान भव्य जिनबिम्बों के भक्तिपूर्वक दर्शन करके पाँच–छह हजार श्रोताओं की सभा में गुरुदेव ने सारगर्भित प्रवचन किया। तत्पश्चात् तिलकनगर में दिगंबर जैन समाज के सहयोग से नवनिर्मित जिनमंदिर में भगवंतों की प्रतिष्ठा करने गये। इस मंदिर का शिलान्यास सं. २०२० में जब स्वामीजी इंदौर पधारे, तब हुआ था। उस भव्य जिनालय में महावीर भगवान की ७ फीट ऊँची मनोज्ञ प्रतिमा विराजमान है; उसके दोनों ओर काँच की सुंदर कारीगरीवाली वेदी में दो जिनबिम्बों को विराजमान करने की विधि पूज्य स्वामीजी की उपस्थिति हुई। दोपहर को प्रवचन के पश्चात् स्वामीजी इंदौर से मक्सीजी के लिये रवाना हुए। मक्सीजी में तारीख ८–५–६९ को पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिष्ठा का महोत्सव हुआ। करीब बारह हजार स्त्री–पुरुषों ने प्रतिष्ठा–महोत्सव में सम्मिलित होकर पूज्य स्वामीजी के प्रवचनों का लाभ लिया।

पूज्य स्वामीजी के शुभहस्त से स्वस्तिक कराके मंदिर पर स्वर्णकलश एवं धर्मध्वज

चढ़ाया गया। इसप्रकार मक्सीजी में भव्य प्रतिष्ठा महोत्सव आनन्दोल्लासपूर्वक मनाया गया। दो दिन तक पूज्य स्वामीजी के अध्यात्मिक प्रवचनों में मिथ्यात्व का नाश एवं सम्यक्त्व की उत्पत्ति का विवेचन सुनकर मध्यप्रदेश के अनेक जिज्ञासु प्रभावित हुए। क्षेत्र को विभिन्न बोलियों द्वारा तथा ध्रौव्य फण्ड में करीब सवा लाख की आय हुई।

तारीख ९-५-६९ को सायंकाल स्वामीजी मक्सीजी से इंदौर पधारे। दूसरे दिन ज्येष्ठ कृष्णा अष्टमी को काँच मंदिर का विशेष अवलोकन किया। मंदिर की दीवार पर एक सुंदर दोहा अंकित है कि—

चक्रवर्ति की सम्पदा इंद्रलोक के भोग।
काकवीट सम गिनत हैं वीतराग के लोग॥

इंदौर के मंदिरों में विराजमान जिनभगवंतों के दर्शन करते हुए अति आनंद होता है। भगवंतों के दर्शन करके ९ बजे विमानगृह पर पहुँचे। वहाँ करीब आध घंटे तक इंदौर के मुमुक्षुओं से पूज्य स्वामीजी तत्त्वचर्चा करते रहे। स्वामीजी ने अलिंगग्रहण आत्मा का स्वरूप समझाते हुए 'उपयोग' का अप्रतिहतपना समझाया, तथा कितनी ही ऐतिहासिक बातें भी कहीं, जिन्हें सुनकर मुमुक्षुओं ने हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त की। सवा दस बजे पुनः पूज्य स्वामीजी के साथ गगनविहार करके बम्बई पहुँचे। आज ज्येष्ठ कृष्णा अष्टमी श्री समयसार की स्थापना का शुभदिन था। ''समयसार के पक्षी ज्ञानगगन में उड़ते हैं''—इस बात का स्मरण गगनविहार में हो रहा था। बम्बई के मुमुक्षुओं ने सान्ताक्रूज पर पुनः पूज्य स्वामीजी का स्वागत करके आनंदोल्लास व्यक्त किया। दूसरे दिन तारीख १०-५-६९ के प्रातःकाल बम्बई से विमान द्वारा पूज्य स्वामीजी ५० मिनिट में सवा सात बजे भावनगर पहुँचे और वहाँ से मंगलवर्धिनी में रवाना होकर ९ बजे सोनगढ़ पहुँचे जहाँ हजारों मुमुक्षुओं ने पूज्य स्वामीजी का हार्दिक स्वागत किया। सर्वप्रथम स्वामीजी ने जिनमंदिर में जाकर सीमंधरनाथ के दर्शन करके अर्घ चढ़ाया। पूज्य स्वामीजी के पधारते ही सुवर्णपुरी का सुप्त वातावरण पुनः जागृत हो गया।

✣ ✣ ✣

पूज्य स्वामीजी ने श्री समयसार तथा श्री प्रवचनसार पर प्रवचन प्रारंभ किये... अध्यात्म की मेघवर्षा मानों प्रारंभ हो गई। दूसरे दिन तारीख ११-५-६९ से विद्यार्थी शिक्षण शिविर का प्रारंभ हुआ, जिसमें बाहर के करीब ढाई सौ विद्यार्थियों एवं अध्यापकों ने भाग लिया। प्रातः

एवं सायंकाल पूज्य स्वामीजी के अध्यात्मिक प्रवचनों के पश्चात् शिक्षण शिविर चलते थे; जिनमें दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर के भूतपूर्व अध्यक्ष माननीय श्री रामजी माणेकचंद दोशी तथा श्री खीमचंद जेठालाल सेठ आदि विद्वानों द्वारा जैनधर्म की शिक्षा दी जाती थी। तारीख ३०-५-६९ के सायंकाल शिक्षण शिविर की पूर्णाहुति हुई और पूज्य स्वामीजी ने सुहस्त से शिक्षार्थियों को पारितोषिक वितरण किया गया।

इससमय डेढ़ मासवाला जैनधर्म शिक्षण शिविर चल रहा है; जिसमें बाहर के अनेक विद्वान, त्यागी एवं जिज्ञासु भाग ले रहे हैं। माननीय श्री रामजी माणेकचंद दोशी प्रतिदिन सवेरे एवं सायंकाल अपनी विशिष्ट प्रभावपूर्ण शैली द्वारा श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक और बृहद् द्रव्यसंग्रह ग्रंथ द्वारा दिगम्बर जैनधर्म की शिक्षा दे रहे हैं। सायंकाल का शिक्षण शिविर पूज्य स्वामीजी की उपस्थिति में लगता है।

मक्सीजी के नूतन दिगम्बर जिनमंदिर में विराजमान श्री पार्श्वनाथ भगवान

अध्यात्म संत श्री कानजी स्वामी

[जीवन परिचय]

गुजराती लेखक : हिम्मतलाल जे. शाह, बी. एससी.

जिनकी ८०वीं जन्मजयंती का रत्नचिंतामणि-महोत्सव गत मास वैशाख शुक्ला दोज के दिन बंबई में अत्यंत हर्षोल्लासपूर्वक मनाया गया, ऐसे परमपूज्य गुरुदेव का जीवनपरिचय आत्मधर्म में पहली बार प्रकाशित करते हुए अति आनंद हो रहा है। पूज्य गुरुदेव के पवित्र जीवन का गुणगान ही उनके प्रति सर्वश्रेष्ठ उपकार-अंजलि है। गुरुदेव का जीवन हममें सत् एवं संत दोनों के प्रति परम आदर भाव जागृत करके आत्मार्थिता का पोषण करता है। *(सम्पादक)*

जन्म एवं बाल्यकाल

परम पूज्य अध्यात्मसंत श्री कानजीस्वामी का शुभजन्म वि.सं. १९४६; वैशाख शुक्ला दोज, रविवार के दिन सौराष्ट्र के उमराला ग्राम में स्थानकवासी जैन सम्प्रदाय में हुआ था। उनकी माता का नाम उजमबाबाई तथा पिता का नाम मोतीचंदजी था। वे दशाश्रीमाली वणिक थे। बचपन में किसी ज्योतिषी ने उनके भविष्य के बारे में कहा था कि वे महापुरुष होंगे। बचपन से ही उनके मुख पर वैराग्य की सौम्यता तथा नेत्रों में बुद्धि एवं वीर्य का तेज दृष्टिगोचर होता था। उन्होंने उमराला के स्कूल में अध्ययन किया था। यद्यपि वे स्कूल में तथा जैन पाठशाला में प्राय: प्रथम नंबर ही आते थे, परंतु स्कूल में जो व्यवहारिक ज्ञान दिया जाता था, उससे उनके मन को संतोष नहीं होता था और अंतर में ऐसा लगता रहता था कि "मैं जिसकी खोज में हूँ वो यह नहीं है।" कभी-कभी तो यह दु:ख तीव्र हो उठता था; और एकबार तो माता से बिछुड़े हुए बालक की भाँति वे बाल-महात्मा सत्-(तात्त्विक सत्य) के वियोग में खूब रोये थे।

व्यापार में लगने पर भी वैराग्य की जागृति

छोटी उम्र में ही माता-पिता का स्वर्गवास हो जाने से वे आजीविका हेतु अपने ज्येष्ठ भ्राता श्री खुशालभाई के साथ पालेज गये और दुकान पर बैठने लगे। धीरे-धीरे दुकान भी अच्छी जम गई। व्यापार में उनका वर्तन प्रामाणिक था। एक बार (करीब १६ वर्ष की उम्र में) उन्हें किसी कारणवश बडौदा की अदालत में जाना पड़ा। वहाँ उन्होंने हाकिम के समक्ष वास्तविक स्थिति स्पष्टता से बतला दी। उनके चेहरे पर तैरती निर्दोषता एवं निडरता की छाप हाकिम के मन पर पड़ी और उसे विश्वास हो गया कि उनकी बात बिल्कुल सत्य है, इसलिए उसे मान्य रखा।

पालेज में वे कभी-कभी नाटक देखने जाते थे; परंतु अत्यंत आश्चर्य की बात तो यह है कि नाटक में से शृंगारिक प्रभाव पड़ने के बदले उन महात्मा के मन पर किसी वैराग्यप्रेरक दृश्य का प्रभाव पड़ता था और वह कई दिनों तक रहता था। कभी-कभी तो नाटक देखकर आने के बाद सारी रात वैराग्य की धुन रहती थी। एकबार नाटक देखने के बाद उन्होंने 'शिवरमणी रमनार तुं, तुं ही देवनो देव' इस पंक्ति से प्रारंभ होनेवाली कविता बनायी थी। सांसारिक रस के प्रबल निमित्तों को भी महान आत्मा वैराग्य का निमित्त बनाते हैं।

वैराग्य और दीक्षा

इसप्रकार पालेज की दुकान में व्यापार का कामकाज करने पर भी उन महात्मा का मन व्यापारमय या संसारमय नहीं हुआ था। उनका अंतर व्यापार तो भिन्न ही था। उनके अंतर का स्वाभाविक झुकाव सदा धर्म एवं सत्य की खोज में ही रहता था। उपाश्रय में कोई साधु आयें कि वे तुरंत उनकी सेवा और धार्मिक चर्चा के लिये दौड़ जाते थे और अधिक समय उपाश्रय में ही बिताते थे। धार्मिक अध्ययन भी चल रहा था। उनका धार्मिक जीवन तथा सरल अंत:करण देखकर उनके सम्बन्धी उन्हें 'भगत' कहते थे। उन्होंने अपने ज्येष्ठ भ्राता श्री खुशालभाई से स्पष्ट कह दिया था कि 'मेरी सगाई मत करना, मेरा विचार दीक्षा लेने का है।' खुशालभाई ने उन्हें बहुत समझाया कि—'भाई, तुझे विवाह न करना हो तो कोई बात नहीं, लेकिन तू दीक्षा न ले। दुकान में तेरा मन न लगता हो तो तू सारा दिन धार्मिक अध्ययन और साधुओं की संगत में लगा, लेकिन दीक्षा की बात न कर।'—इसप्रकार बहुत-बहुत समझाने पर भी उन महात्मा के वैरागी चित्त को संसार में रहना पसंद नहीं आया। दीक्षा लेने से पूर्व वे कुछ महीने तक उन्होंने

आत्मार्थी गुरु की खोज में काठियावाड, गुजरात तथा मारवाड़ के अनेक नगरों में भ्रमण किया; अनेक साधु मिले, परंतु कहीं उनका मन स्थिर नहीं हुआ। सच बात तो यह थी कि—पूर्वभव की अधूरी छोड़ी हुई साधना के लिये जन्मे हुए वे महात्मा स्वयं ही गुरु होनेयोग्य थे। अंत में बोटाद सम्प्रदाय के स्थानकवासी जैन साधु हीराचंदजी महाराज के हस्त से दीक्षा ग्रहण करने का निर्णय किया और वि.सं. १९७०, मगसिर शुक्ला ९ रविवार के दिन उमराला में बड़ी धूमधाम से दीक्षामहोत्सव हुआ।

शास्त्राभ्यास और पुरुषार्थ-जीवन मंत्र

दीक्षा लेने के पश्चात् तुरंत ही पूज्य स्वामीजी ने श्वेताम्बर शास्त्रों का गहन अध्ययन प्रारंभ कर दिया; वह यहाँ तक कि आहारादि शारीरिक आवश्यकताओं में जो समय जाता था, वह भी उन्हें खटकता था। वे तो दिन भर उपाश्रय के किसी एकांत भाग में अध्ययन करते दिखायी देते थे। इसप्रकार चार वर्ष में लगभग सभी श्वेताम्बर शास्त्रों का गहन अध्ययन विचारपूर्वक समाप्त कर लिया। वे सम्प्रदाय की रीति अनुसार चारित्र का पालन दृढ़ता से करते थे। कुछ ही समय में उनकी आत्मार्थिता की, ज्ञानपिपासा की एवं उग्र चारित्र की सुवास काठियावाड़ (सौराष्ट्र) में फैल गई। उनके गुरु की उन पर बड़ी कृपा थी। स्वामीजी पहले से ही तीव्र पुरुषार्थी थे। कई बार उन्हें किसी 'भवितव्यता' में ही माननेवाले व्यक्ति की ओर से ऐसा सुनने को मिलता कि—'चाहे जैसे कठिन चारित्र का पालन करें परंतु यदि केवली भगवान ने अनंत भव देखे होंगे तो उनमें से एक भी भव कम होनेवाला नहीं है।' स्वामीजी ऐसे पुरुषार्थहीनता के मिथ्यावचनों को सहन नहीं कर सकते थे और बोल उठते थे कि 'जो पुरुषार्थी है, उसके अनंत भव केवली भगवान ने देखे ही नहीं हैं।' जिसे पुरुषार्थ भासित हुआ है, उसके अनंत भव होते ही नहीं, पुरुषार्थ को भवस्थिति आदि कोई बाधक नहीं होते, उसे तो पाँचों समवाय कारण प्राप्त हो गये हैं। 'पुरुषार्थ, पुरुषार्थ और पुरुषार्थ' यह स्वामीजी का जीवन मंत्र है।

दीक्षा के वर्षों में स्वामीजी ने श्वेताम्बर शास्त्रों का खूब अध्ययन किया। 'भगवती सूत्र' उन्होंने १७ बार पढ़ा है। प्रत्येक कार्य करते हुए उनका लक्ष सत्य की शोध के प्रति रहता था।

शासन-उद्धार की एक पवित्र घटना : समयसार की प्राप्ति

सं. १९७८ में अनेक मुमुक्षुओं की पुण्योदय सूचक एक पवित्र घटना हो गई। भाग्य के

किसी धन्य क्षण में श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव-विरचित श्री समयसार नाम का महान ग्रंथ पूज्य स्वामीजी के हस्तकमल में आ गया। समयसार पढ़ते ही उनके हर्ष का पार न रहा। जिसकी खोज में वे थे, वह उन्हें मिल गया। उनके अंतर्नेत्रों ने श्री समयसारजी में अमृत के सरोवर झलकते देखे। एक के बाद एक गाथा पढ़ते हुए स्वामीजी ने घूँट ले-लेकर उस अमृत का पान किया। ग्रंथाधिराज समयसारजी ने स्वामीजी पर अपूर्व, अलौकिक, अनुपम उपकार किया और उनके आत्मानंद का पार न रहा। स्वामीजी के अंतर्जीवन में परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली-भटकी हुई परिणति ने निजघर देखा; उपयोग-झरने का प्रवाह अमृतमय हो गया। जिनेश्वरदेव के सुनंदन गुरुदेव की ज्ञान कला अब अपूर्व ढंग से खिलने लगी।

अद्भुत व्याख्यान शैली और सम्यग्दर्शन की महिमा

संवत् १९९१ तक स्वामीजी ने स्थानकवासी संप्रदाय में रहकर बोटाद, बढ़वाण, अमेरली, पोरबंदर, जामनगर, राजकोट आदि नगरों में चातुर्मास किये और शेष काल में सैकड़ों छोटे-बड़े ग्रामों को पावन किया। काठियावाड़ के हजारों लोगों में स्वामीजी के उपदेश के प्रति हार्दिक बहुमान प्रगट हुआ। अंतरात्मधर्म का खूब उद्योत हुआ। जिस नगर में स्वामीजी का चातुर्मास हो, वहाँ बाहर के हजारों स्त्री-पुरुष दर्शन करने आते और स्वामीजी की अमृतवाणी का लाभ लेते थे। स्वामीजी श्वेताम्बर संप्रदाय में होने से व्याख्यान में मुख्यतः श्वेताम्बर शास्त्रों की वचनिका होती थी (यद्यपि अंतिम वर्षों में समयसारादि शास्त्र भी सभा में पढ़े जाते थे।) परंतु अपना हृदय अपूर्व होने से उन शास्त्रों में से भी स्वामीजी अन्य व्याख्याताओं की अपेक्षा भिन्न प्रकार के अपूर्व सिद्धांत निकालते थे, विवाद के स्थलों को छेड़ते ही न थे। वे कोई भी अधिकार पढ़ते हों, उसमें कही हुई वास्तविकता को अंतरंग भावों के साथ मिलाकर उसमें से ऐसे अलौकिक आध्यात्मिक न्याय निकालते थे कि जो कहीं सुनने को न मिले हों। "जिस भाव से तीर्थंकर नामकर्म का बंध हो, वह भाव भी हेय है... शरीर के रोम-रोम में तीव्र रोग का होना, वह दुःख नहीं है, दुःख का स्वरूप अलग है... व्याख्यान सुनकर कई लोग पूछे तो मुझे बहुत लाभ हो, ऐसा माननेवाला व्याख्याता मिथ्यादृष्टि है... इस दुःख में समता नहीं रखूँगा तो कर्म बंध होगा—ऐसे भाव सहित समता रखना, वह भी मोक्षमार्ग नहीं है... व्यवहार पाँच महाव्रत भी मात्र पुण्य बंध का कारण है।" ऐसे हजारों अपूर्व न्याय स्वामीजी अपने व्याख्यान में अत्यंत स्पष्टरूप से लोगों को समझाते थे। प्रत्येक

व्याख्यान में वे सम्यग्दर्शन पर अत्यंत भार देते थे। वे अनेक बार कहते थे कि—''शरीर की त्वचा उतारकर नमक छिड़कनेवाले पर भी क्रोध नहीं किया—ऐसे व्यवहारचारित्र को इस जीव ने अनंत बार पालन किया है परंतु सम्यग्दर्शन एक बार भी प्रगट नहीं किया। लाखों जीवों की हिंसा की अपेक्षा मिथ्यादर्शन का पाप अनंतगुना है... सम्यक्त्व सुगम नहीं है। लाखों-करोड़ों में किसी जीव को वह होता है। सम्यक्त्वी जीव अपना निर्णय स्वयं ही कर सकता है, सम्यक्त्वी समस्त ब्रह्माण्ड के भावों को पी गया होता है। आजकल तो सब अपने-अपने घर का सम्यक्त्व मान बैठे हैं; सम्यक्त्वी को तो मोक्ष के अनंत सुख का नमूना प्राप्त हुआ होता है। सम्यक्त्वी का वह सुख, मोक्षसुख के अनंतवें भाग होने पर भी अनंत है।'' अनेक प्रकार से, अनेक तर्कों से, अनेक दृष्टांतों से सम्यक्त्व का अद्भुत माहात्म्य वे लोगों को ठसाते थे। स्वामीजी की जैनधर्म के प्रति अनन्य अचल श्रद्धा है। सारा जगत न माने, तथापि अपनी मान्यता में स्वयं अकेले टिके रहने की अजब दृढ़ता तथा अनुभव के जोरपूर्वक निकलती हुई उनकी न्याय भरी वाणी बड़े-बड़े नास्तिकों को विचार में डाल देती थी और कितनों को आस्तिक बना देती थी। उस केसरी सिंह का सिंहनाद पात्र जीवों के हृदय की गहराई का स्पर्श करके उनके आत्मिक वीर्य को उल्लसित करता था। सत्य के बल से समस्त जगत के अभिप्रायों से सम्मुख जूझते हुए उस अध्यात्मयोगी की गर्जना जिन्होंने सुनी होगी, उनके कानों में अब भी उसकी ध्वनि गूँजती होगी।

ऐसी अद्भुत प्रभावशाली एवं कल्याणकारिणी वाणी अनेक जीवों को आकर्षित करे, वह स्वाभाविक है। साधारणतः उपाश्रय में काम-धन्धे से निवृत्त हुए वृद्ध पुरुष आते हैं; परंतु जहाँक ानजीस्वामीप धारतेथ`,व हाँत ोि शक्षितय ुवक,व कील,ड ॉक्टरअ ौरश ाास्त्रज्ञान रखनेवाले लोगों से उपाश्रय भर जाता था। बड़े नगरों में तो स्वामीजी का व्याख्यान किसी विशाल जगह में रखना पड़ता था। दिन-प्रतिदिन उनकी ख्याति बढ़ती ही गई। व्याख्यान में हजारों लोग आते थे। आसपास के ग्रामों से भी लोग अच्छी संख्या में एकत्रित होते थे। जगह आगे मिले, इस हेतु अनेक स्त्री-पुरुष घंटा डेढ़ घंटा पहले ही आ बैठते थे। कोई जिज्ञासु व्याख्यान संक्षेप में लिख लेते थे। जिस नगर में स्वामीजी पधारते थे, वहाँ श्रावकों के घर-घर में धर्मचर्चा चलती थी और सर्वत्र धर्म का वातावरण छा जाता था। गलियों में भी श्रावकों की टोलियाँ धर्म की बातें करती दिखायी देती थीं। प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल उपाश्रय के रास्तों

पर लोगों का आना-जाना लगा रहता था। उपाश्रय में लगभग पूरे दिन तत्त्वज्ञानचर्चा की शीतल लहरें आती थीं। कितने ही मुमुक्षुओं का मन तो व्यापार-धंधे में भी नहीं लगता था और स्वामीजी की शीतल छाया में अधिकांश समय बिताते थे। इसप्रकार गाँव-गाँव में अनेक सत्पात्र जीवों के हृदय में स्वामीजी ने सत् का बीजारोपण किया। स्वामीजी के वियोग में भी वे मुमुक्षु उनके बोध का विचार करते थे। भवभ्रमण का अन्त कैसे हो, सम्यक्त्व की प्राप्ति किसप्रकार होगी—उसकी अभिलाषा करते हुए कभी-कभी मिलकर तत्त्वचर्चा और स्वामीजी द्वारा बतलायी गई पुस्तकों का अध्ययन-मनन करते थे।

स्थानकवासी साधुओं में स्वामीजी का स्थान अद्वितीय था। 'कानजी स्वामी क्या कहते हैं'—यह जानने के लिये साधु-साध्वियाँ उत्सुक रहते थे। कुछ साधु साध्वियाँ स्वामीजी के व्याख्यान की टिप्पणियाँ मुमुक्षु भाई-बहिनों से लेकर पढ़ लेते थे।

स्वामीजी ने कई वर्षों तक स्थानकवासी समुदाय में रहकर धर्म का खूब प्रचार किया और साधुओं तथा श्रावकों को विचार में डाल दिया।

परिवर्तन : सम्प्रदाय त्याग

स्वामीजी सं. १९९१ तक स्थानकवासी सम्प्रदाय में रहे; परंतु अंतरंग आत्मा में वास्तविक वस्तुस्वभाव एवं सर्वज्ञ वीतराग कथित दिगंबर जैन निर्ग्रंथ मार्ग दीर्घकाल से सत्य लगने के कारण उन्होंने सोनगढ़ नामक छोटे से ग्राम में वहाँ के एक गृहस्थ के खाली मकान में सं. १९९१ चैत्र शुक्ला १३ मंगलवार के दिन 'परिवर्तन' किया—स्थानकवासी सम्प्रदाय के चिह्न मुखवस्त्रिका (मुँहपत्ति) का त्याग कर दिया। सम्प्रदाय का त्याग करनेवालों पर कैसी-कैसी महान विपत्तियाँ आती हैं, बाल जीवों की ओर से अज्ञान के कारण उन पर कैसी अघटित निंदा की झड़ियाँ बरसती हैं, उसका उन्हें पूरा ख्याल था; तथापि उन निडर तथा निस्पृह महात्मा ने उसकी कोई परवाह नहीं की। सम्प्रदाय के हजारों श्रावकों के हृदय में स्वामीजी अग्रस्थान पर विराजते थे, इसलिये अनेक श्रावकों अनेक प्रकार से प्रेमपूर्वक परिवर्तन न करने की प्रार्थना की; परंतु जिनके रोम-रोम में सर्वज्ञ वीतराग प्रणीत यथार्थ सन्मार्ग के प्रति (सम्यक् दिगम्बर जैनधर्म के प्रति) भक्ति उल्लसित हो रही थी, वे महात्मा उस प्रेमपूर्ण प्रार्थना को हृदय में लेकर, राग में बहकर, सत् को कैसे गौण होने देते ? सत् के प्रति परम भक्ति में सर्वप्रकार की प्रतिकूलता का भय तथा अनुकूलता का राग अत्यंत गौण हो गये। जगत से बिल्कुल

निरपेक्षरूप विशाल मानवसमुदाय के बीच गरजनेवाला वह सिंह सत् के लिये सोनगढ़ के एकांत स्थान में जा बैठा।

स्वामीजी ने जिसमें परिवर्तन किया था, वह मकान बस्ती से दूर होने के कारण अत्यंत शांत था। आनेवाले मनुष्य का पगरव दूर से सुनायी देता था। कुछ महीनों तक ऐसे निर्जन स्थान में मात्र (स्वामीजी के परमभक्त) जीवणलालजी महाराज के साथ तथा दर्शनार्थ आनेवाले किन्हीं दो-चार मुमुक्षुओं के साथ स्वाध्याय, ज्ञान-ध्यान आदि में लीन हुए स्वामीजी को देखने पर हजारों का जनसमुदाय स्मृतिगोचर होता था और उस वैभव को सर्पकंचुकवत् छोड़नेवाले महात्मा की सिंहवृत्ति, निरीहता एवं निर्मानता के आगे हृदय झुक जाता था।

सम्प्रदाय पर परिवर्तन का प्रभाव

जो स्थानकवासी सम्प्रदाय कानजीस्वामी के नाम से गौरव लेता था, उसमें स्वामी के 'परिवर्तन' से खलबली मच जाना स्वाभाविक है। परंतु स्वामीजी ने सं. १९९१ तक तो काठियावाड़ में लगभग प्रत्येक स्थानकवासी के हृदय में स्थान बना लिया था, स्वामीजी के पीछे मानों काठियावाड़ पागल हो गया था। इसलिये 'स्वामीजी ने जो कुछ किया होगा, वह समझकर ही किया होगा'—ऐसा विचारकर धीरे-धीरे कई लोग तटस्थ हो गये। कई लोग सोनगढ़ में क्या चलता है, वह देखने के लिये आते थे परंतु स्वामीजी का परम पवित्र जीवन एवं अपूर्व उपदेश सुनकर शांत हो जाते थे, भक्ति का टूटा हुआ प्रवाह पुनः प्रवाहित होने लगता था। कोई-कोई तो पश्चाताप करते थे कि—'महाराज, आपके संबंध में बिलकुल कल्पित बातें सुनकर हमने आपकी बड़ी आशातना की है, और खूब कर्म बाँधे हैं, हमें क्षमा कीजिये।' इसप्रकार ज्यों-ज्यों स्वामीजी के पवित्र उज्ज्वल जीवन एवं आध्यात्मिक उपदेश संबंधी बातें लोगों में फैलती गई, त्यों-त्यों अधिकाधिक लोग स्वामीजी के प्रति मध्यस्थ होते गये और साम्प्रदायिक मोह के कारण जो भक्ति दब गई थी, वह कई लोगों में पुनः प्रगट होती गई। मुमुक्षु एवं बुद्धिशाली समुदाय की भक्ति तो स्वामीजी के प्रति ज्यों की त्यों बनी हुई थी। अनेक मुमुक्षुओं के जीवनाधार कानजीस्वामी सोनगढ़ जाकर रहे, तो उनके चित्त सोनगढ़ की ओर आकर्षित हुए। धीरे-धीरे मुमुक्षुओं का प्रवाह सोनगढ़ की ओर बहने लगा। सांप्रदायिक मोह अत्यंत दुर्निवार होने पर भी सत् के अर्थी जीवों की संख्या त्रिकाल अत्यंत अल्प होने पर भी, सांप्रदायिक मोह तथा लौकिक भय को छोड़कर सोनगढ़ की ओर बहता हुआ सत्संगार्थी जनों

का प्रवाह दिन-प्रतिदिन वेगपूर्वक बढ़ता ही जा रहा है।

परिवर्तन करने के पश्चात् पूज्य स्वामीजी का मुख्य निवास सोनगढ़ में ही है। उनकी उपस्थिति से सोनगढ़ एक तीर्थ जैसा बन गया है। बाहर के अनेक मुमुक्षु भाई-बहिन स्वामीजी की वाणी का लाभ लेने के लिये सोनगढ़ आते हैं। दूर-दूर के प्रदेशों से अनेक दिगम्बर जैन पण्डित, ब्रह्मचारी-त्यागी भी आते हैं। बाहर से आनेवालों के लिये ठहरने तथा भोजनादि के लिये यहाँ एक जैन-अतिथिगृह है। अनेक मुमुक्षु भाई-बहिन तो अब यहाँ अपने घर बसाकर स्थायीरूप से रहने लगे हैं; कुछ लोग लगातार महीनों तक रहते हैं। वर्तमान में करीब २०० घर स्थायीरूप से निवास करनेवाले मुमुक्षुओं के हो गये हैं।

श्री जैन स्वाध्यायमंदिर एवं धर्मचर्चा

पूज्य स्वामीजी ने जिस मकान में परिवर्तन किया था, वह मकान छोटा था; इसलिये जब कई लोग आ जाते थे, तब व्याख्यान के लिये स्थान की कमी पड़ती थी। भक्तों ने एक योजना बनाकर सं. १९९४ में एक मकान बनवाया और उसका नाम 'श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर' रखा। स्वामीजी आजकल वहाँ रहते हैं। लगभग पूरे दिन स्वाध्याय चलती रहती है। सवेरे-दोपहर को धर्मोपदेश दिया जाता है। दोपहर को धर्मोपदेश के पश्चात् भक्ति होती है और रात्रि को धर्मचर्चा चलती है। धर्मोपदेश में तथा अन्य वचनिका में यहाँ भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के शास्त्र, तत्त्वार्थसार, गोम्मटसार, षट्खंडागम, पंचाध्यायी, पद्मनंदि, पंचविंशतिका, द्रव्यसंग्रह, मोक्षमार्गप्रकाशक, समाधितंत्र, इष्टोपदेश, परमात्मप्रकाश आदि का पठन होता है। आनेवाले मुमुक्षु का सारा दिन धार्मिक आनंद में व्यीतत हो जाता है।

समयसार एवं कुन्दकुन्दाचार्य भगवान तथा श्री सीमंधर भगवान की भक्ति

परम पूज्य अध्यात्मयोगी गुरुदेव को समयसारजी के प्रति अतिशय भक्ति है, इसलिये जिस दिन स्वाध्यायमंदिर का उद्घाटन हुआ, उसी दिन अर्थात् सं. १९९४ ज्येष्ठ कृष्णा अष्टमी रविवार के दिन स्वाध्यायमंदिर में श्री समयसारजी की प्रतिष्ठा की गई है। श्री समयसारजी प्रतिष्ठा-महोत्सव के अवसर पर बाहर से करीब ७०० (सात सौ) मुमुक्षु सोनगढ़ आये थे। स्वामीजी श्री समयसार को उत्तमोत्तम शास्त्र मानते हैं। समयसारजी की बात करते हुए भी वे अति उल्लसित हो जाते हैं। उनका कहना है कि समयसारजी की प्रत्येक गाथा मोक्ष प्रदान करे ऐसी है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के समस्त शास्त्रों के प्रति उन्हें अत्यंत प्रेम है। वे कई बार

भक्तिभीने अंतर से कहते हैं कि 'भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव का हमारे ऊपर महान उपकार है, हम उनके दासानुदास हैं।' श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्य महाविदेहक्षेत्र में सर्वज्ञ वीतराग श्री सीमंधर भगवान के समवसरण में गये थे और वहाँ वे आठ दिन रहे थे—इस विषय में स्वामीजी को रंचमात्र शंका नहीं है। वे कई बार पुकार कर कहते हैं कि—'कल्पना मत करना, इंकार मत करना, यह बात ऐसी ही है; मानो तो भी ऐसी ही है, न मानो तो भी ऐसी ही है यथातथ्य बात है, अक्षरशः सत्य है, प्रमाण सिद्ध है।' श्री सीमंधर भगवान के प्रति गुरुदेव को अपार भक्ति हैं। कभी-कभी तो सीमंधरनाथ के विरह में परमभक्तिवान स्वामीजी के नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगती है।

जैनधर्म की श्रद्धा और प्रचार

वीतराग के परम भक्त गुरुदेव कहते हैं कि—'जैनधर्म वह कोई वाड़ा नहीं है, वह तो विश्वधर्म है। जैनधर्म का मेल अन्य किसी धर्म के साथ है ही नहीं। जैनधर्म के साथ अन्य धर्मों के समन्वय का प्रयत्न करना, वह रेशम के साथ टाट के समन्वय का प्रयत्न करने जैसा व्यर्थ है। दिगम्बर जैनधर्म ही वास्तविक जैनधर्म है और आंतरिक तथा बाह्य दिगम्बरत्व के बिना कोई जीव मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता।—ऐसी उनकी दृढ़ मान्यता है। वे कहते हैं कि—स्वानुभूतियुक्त सम्यग्दर्शन सम्प्राप्त करके, पश्चात् शुद्धात्मा में विशेष स्थिर होकर, जब जीव ऐसी आंतरिक शुद्धदशारूप परिणमित हो कि बाह्य में भी वह (आंतरिक सहजज्ञानदशा के अनुरूप) यथाजातरूप-दिगम्बरत्व सहजरूप से (हठ के बिना) धारण करे और अंतर्बाह्य सर्वविरतदशारूप से सदैव वर्ते, तभी वह जीव यथार्थ मुनि कहलाता है। ऐसे शुद्धात्मस्थित भावद्रव्यलिंगी यथाजातरूप मुनि के हम दास हैं। सर्वज्ञप्रणीत दिगम्बर जैन शासन के महान उपासक स्वामीजी के द्वारा समयसार, प्रवचनसार, पंचाध्यायी, मोक्षमार्गप्रकाशक आदि अनेक दिगम्बर ग्रंथों का खूब-खूब प्रचार काठियावाड़ में हो रहा है। सोनगढ़ के साहित्य-प्रकाशन विभाग द्वारा श्री समयसार की २००० प्रतियाँ छपकर तुरंत बिक गई हैं। तदुपरान्त समयसार-गुटका, समयसार-हरिगीत, समयसार प्रवचन, अनुभव प्रकाश आदि अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई और सौराष्ट्र में फैल गईं। आत्मसिद्धि शास्त्र की हजारों प्रतियाँ भी यहाँ से छपकर प्रचार में आयी हैं। गुजरात-सौराष्ट्र के अध्यात्मप्रेमी मुमुक्षुओं को गुजराती भाषा में आध्यात्मिक साहित्य सुलभ हुआ है। हजारों मुमुक्षु उसका अध्ययन करने लगे हैं। अनेक नगरों में दस-

बीस आदि मुमुक्षु एकत्रित होकर गुरुदेव के निकट ग्रहण किये हुए रहस्यानुसार समयसारादि उत्तम शास्त्रों का नियमित पठन-पाठन करते हैं। इसप्रकार परम पूज्य स्वामीजी की कृपा से परम पवित्र श्रुतामृत की नहरें सौराष्ट्र के गाँव-गाँव में बहने लगी हैं। अनेक सुपात्र जीव उस जीवनोदक का पान करके कृतार्थ हो रहे हैं।

[पूज्य श्री कानजीस्वामी के पुनीत प्रताप से सं. २०२५ तक गुजराती के अलावा हिन्दी भाषा में भी आध्यात्मिक-साहित्य अति विपुल प्रमाण में प्रकाशित हुआ है और सौराष्ट्र-गुजरात की सीमाओं से पार देश के अनेक भागों में विस्तृत प्रचार हुआ है। चेतन द्रव्य एवं सम्यग्दर्शन की महिमा को तथा सत्पुरुषार्थ के पंथ को प्रकाशित करनेवाला वह साहित्य भारत के अनेकानेक स्वाध्याय प्रेमी जिज्ञासु जीवों को जिनेन्द्रप्रणीत सन्मार्ग का लक्ष कराने में निमित्तभूत बन रहा है।]

उपदेश का प्रधान स्वर

पूज्य स्वामीजी का मुख्य भार यथार्थ समझने पर है। 'तुम समझो, समझे बिना सब व्यर्थ है'—ऐसा वे बारंबार कहते हैं। कोई आत्मा—ज्ञानी या अज्ञानी—एक परमाणुमात्र को हिलाने का सामर्थ्य नहीं रखता; तो फिर शरीरादि की क्रिया आत्मा के हाथ में कहाँ से होगी? ज्ञानी और अज्ञानी में आकाश-पाताल जितना महान अंतर है और वो यह है कि—अज्ञानी परद्रव्य का तथा राग-द्वेष का कर्ता होता है, जबकि ज्ञानी अपने को शुद्ध अनुभव करता हुआ उनका कर्ता नहीं होता। उस कर्तृत्वबुद्धि को छोड़ने का महापुरुषार्थ प्रत्येक जीव को करना है। वह कर्तृत्वबुद्धि सम्यग्ज्ञान के बिना नहीं छूटेगी; इसलिये तुम ज्ञान करो।'—यह उनके उपदेश का प्रधान स्वर है। जब कोई श्रोता कहते हैं कि—'स्वामीजी! आप तो मेट्रिक की और एम.ए. की बात करते हैं; हम अभी एकन्ना पढ़ रहे हैं, हमें एकन्ने की बात सुनाइये' तब स्वामीजी कहते हैं—'यह जैनधर्म का एकन्ना ही है; इसे समझना ही प्रारंभ है; मेट्रिक की तथा एम.ए. की अर्थात् निर्ग्रंथ दशा की और वीतरागता की बातें तो दूर हैं। इसे समझने से ही उद्धार है। एक भव में, दो भव में, पाँच भव में या अनंत भव में इसे समझने पर ही मोक्षमार्ग का प्रारंभ होना है।'

अंतर्विकास एवं मुमुक्षुओं पर परम उपकार

पूज्य स्वामीजी के ज्ञान को सम्यक्पने की मुहर तो बहुत समय से लग चुकी थी। वह सम्यग्ज्ञान सोनगढ़ के विशेष निवृत्तिवाले स्थान में अद्भुत सूक्ष्मता को प्राप्त हुआ; नयी-नयी

ज्ञानशैली सोनगढ़ में खूब विकसित हुई। अमृतकलश में जैसे अमृत घुल रहा हो, उसीप्रकार स्वामीजी के परम पवित्र अमृतकलशस्वरूप आत्मा में तीर्थंकरदेव के वचनामृत खूब घुले-घुँटे। वह घुँटा हुआ अमृत स्वामीजी अनेक मुमुक्षुओं को परोसते हैं और उन्हें निहाल कर देते हैं। समयसार, प्रवचनसार आदि ग्रंथों पर प्रवचन करते हुए गुरुदेव के प्रत्येक शब्द में इतनी गहनता, सूक्ष्मता एवं नवीनता निकलती है कि वह श्रोताजनों के उपयोग को भी सूक्ष्म बना देती है और विद्वानों को आश्चर्यचकित कर देती है। जिस अनंत आनंदमय चैतन्यघन दशा को प्राप्त करके तीर्थंकरदेव ने शास्त्रों की प्ररूपणा की, उस परम पवित्रदशा का सुधास्यन्दी स्वानुभूतिस्वरूप पवित्र अंश अपने आत्मा में प्रगट करके स्वामीजी विकसित ज्ञानपर्याय द्वारा शास्त्र में विद्यमान गहन रहस्य सुलझाकर मुमुक्षु को समझाकर अपार उपकार कर रहे हैं। सैकड़ों शास्त्रों के अभ्यासी विद्वान भी स्वामीजी की वाणी सुनकर उल्लसित होकर कहते हैं—'गुरुदेव! आपके अपूर्व वचनामृत का श्रवण करके हमें तृप्ति ही नहीं होती! आप कोई भी बात समझायें, उसमें से हमें नई-नई जानकारी मिलती है। नवतत्त्वों का स्वरूप हो या उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य का स्वरूप, स्याद्वाद का स्वरूप या सम्यक्त्व का स्वरूप निश्चय-व्यवहार का स्वरूप या व्रत-नियम-तप का स्वरूप, उपादान-निमित्त का स्वरूप या साध्य-साधन का स्वरूप, द्रव्यानुयोग का स्वरूप या चरणानुयोग का स्वरूप, गुणस्थान का स्वरूप या बाधक-साधकभाव का स्वरूप, मुनिदशा का स्वरूप या केवलज्ञान का स्वरूप—जिस-जिस विषय का स्वरूप हम आपके मुख से सुनते हैं, उसमें हमें अपूर्व भाव दृष्टिगोचर होते हैं। हमने शास्त्रों में से जो अर्थ निकाले थे, वे बिलकुल ठीक जड़-चेतन की मिलावट वाले, शुभ की शुद्ध में खतौनी करनेवाले, संसारभाव का पोषण करनेवाले, विपरीत एवं न्यायविरुद्ध थे; आपके अनुभवमुद्रित अपूर्व अर्थ तो शुद्ध सुवर्ण जैसे, जड़-चेतन को भिन्न-भिन्न करनेवाले, शुभ और शुद्ध के स्पष्ट विभाग करनेवाले, मोक्षभाव का ही पोषण करनेवाले, सम्यक् एवं न्याययुक्त हैं। आपके शब्द-शब्द में वीतरागदेव का हृदय प्रगट होता है; हम वाक्य-वाक्य में वीतरागदेव की विराधना करते थे; हमारा एक वाक्य भी सच्चा नहीं था। शास्त्र में ज्ञान नहीं है, ज्ञानपर्याय में ज्ञान है—इस बात का हमें अब साक्षात्कार होता है। शास्त्रों में सद्गुरुदेव का जो माहात्म्य है, वह अब हमारी समझ में आ रहा है। शास्त्रों के ताले खोलने की कुंजी वीतरागदेव ने सद्गुरु को सौंपी है। सद्गुरु का उपदेश प्राप्त किये बिना शास्त्रों को उकेलना अत्यंत कठिन है।

अध्यात्ममस्ती से भरपूर, चमत्कारिक व्याख्यानशैली

परम कृपालु गुरुदेव का ज्ञान जैसा अगाध और गंभीर है, वैसी ही उनकी व्याख्यानशैली चमत्कार पूर्ण है। जो बात वे कहते हैं, उसे स्पष्टता से, अनेक सादा उदाहरण देकर, शास्त्री शब्दों का कम से कम प्रयोग करके इसप्रकार समझाते हैं कि सामान्य मनुष्य भी उसे सरलता से समझ जाये। अत्यंत गहन विषय को भी अत्यंत सुगम रीति से प्रतिपादित करने की स्वामीजी में विशिष्ट शक्ति है। तथा स्वामीजी की व्याख्यानशैली इतनी रसपूर्ण है कि जिसप्रकार सर्प बीन का नाद सुनकर मुग्ध हो जाता है; उसीप्रकार श्रोता भी मंत्रमुग्ध हो जाते हैं; समय कहाँ बीत जाता है, उसका ध्यान तक नहीं रहता। स्पष्ट एवं रसपूर्ण होने के अलावा भी स्वामीजी का प्रवचन श्रोताओं में अध्यात्म का प्रेम उत्पन्न करता है। स्वामीजी प्रवचन करते हुए अध्यात्म में ऐसे तन्मय हो जाते हैं, परमात्मदशा के प्रति ऐसी भक्ति उनके मुख पर दिखायी देती है जिसका प्रभाव श्रोताओं पर पड़े बिना नहीं रहता। अध्यात्म की जीवन्मूर्ति गुरुदेव के शरीर के अणु-अणु से मानों अध्यात्म रस झरता है; उन अध्यात्ममूर्ति की मुखमुद्रा, नेत्र, वाणी, हृदय सब एकतार होकर अध्यात्म की धारा बहाते हैं और मुमुक्षुओं के हृदय उस अध्यात्मरस में भीग जाते हैं।

वर्तमान काल में मुमुक्षुओं का महाभाग्य

पूज्य स्वामीजी का व्याख्यान सुनना जीवन का महान लाभ है। उनका व्याख्यान सुनने के पश्चात् अन्य व्याख्याताओं का व्याख्यान अच्छा नहीं लगता। उनका व्याख्यान सुननेवाले को इतना तो स्पष्ट लगता है कि—'यह पुरुष कुछ और प्रकार का है, जगत से यह कुछ अलग कहता है, अपूर्व कहता है। इसके कथन में कोई अजब दृढ़ता एवं जोर है। ऐसा तो कहीं नहीं सुना।' स्वामीजी के व्याख्यान में से अनेक जीव अपनी-अपनी पात्रतानुसार लाभ प्राप्त कर लेते हैं। कितनों के सत् के प्रति रुचि जागृत होती है, कितनों में सत् को समझने के अंकुर फूटते हैं और किन्हीं विरले जीवों की तो दशा ही पलट जाती है।

अहो! ऐसा अलौकिक पवित्र अंतर्परिणमन-कथंचित् केवलज्ञान का अंश तथा ऐसा प्रबल प्रभावना उदय-तीर्थंकरत्व का अंश—इन दो का सुयोग इस कलिकाल में देखकर रोमांच होता है। अब भी मुमुक्षुओं का महापुण्य तप रहा है।

काठियावाड़ के आँगन में कल्पवृक्ष

अहो! उन परम प्रभावक अध्यात्म मूर्ति की वाणी की तो क्या बात! उनके दर्शन भी महापुण्य उल्लसित हो, तब प्राप्त होते हैं। उन अध्यात्मयोगी के निकट संसार के आधि-व्याधि-उपाधि आ नहीं सकते। संसारतप्त प्राणी वहाँ परम विश्रांति प्राप्त करते हैं और संसार के दु:ख उन्हें मात्र कल्पना से उत्पन्न किये भासित होने लगते हैं। जो वृत्तियाँ महाप्रयत्न से भी नहीं दबती थीं, वे स्वामीजी के सान्निध्य में बिना किसी प्रयत्न के शांत हो जाती हो जाती हैं—ऐसा अनेक मुमुक्षुओं का अनुभव है। आत्मा का निवृत्तिमय स्वरूप, मोक्ष का सुख आदि भावों की जो श्रद्धा अनेक तर्कों से नहीं होती, वह स्वामीजी के दर्शनमात्र से हो जाती है। स्वामीजी का ज्ञान और चारित्र मुमुक्षु पर कल्याणकारी प्रभाव डालता है। सचमुच काठियावाड़ के आँगन में शीतल छायायुक्त, वांछित फल देनेवाला कल्पवृक्ष फलित हुआ है। काठियावाड़ का महा-भाग्योदय हुआ है।

अब, सोनगढ़ में परिवर्तन करने के पश्चात् स्वामीजी के जीवनवृत्तांत के साथ संबंध रखनेवाले कुछ प्रसंग कालानुक्रम से संक्षेप में देखें।

शत्रुंजय यात्रा

सोनगढ़ से १४ मील दूर स्थित श्री शत्रुंजयतीर्थ की यात्रा की भावना स्वामीजी को बहुत दिनों से थी, जो संवत् १९९५ के माघ कृष्णा तेरस को पूर्ण हुई। करीब २०० भक्तों सहित स्वमीजी ने तीर्थराज की यात्रा अति उत्साह एवं भक्तिपूर्वक की थी।

राजकोट में चातुर्मास

राजकोट के जिज्ञासुओं का अत्याग्रह होने से स्वामीजी संवत् १९९५ में राजकोट पधारे और वहाँ दसेक महीने की स्थिति में स्वामीजी ने समयसार, आत्मसिद्धि एवं पद्मनंदि पंचविंशतिका पर अपूर्व प्रवचन किये। स्वामीजी की आगे बढ़ी हुई ज्ञान-पर्यायों में से निकले हुए जड़-चेतन के विभाग के, निश्चय-व्यवहार की संधि के तथा अन्य अनेक अपूर्व न्याय सुनकर राजकोट के हजारों लोग पावन हुए और अनेक सुपात्र जीवों ने पात्रानुसार आत्मलाभ प्राप्त किया। दस महीने तक 'आनंदकुंज' में (जहाँ स्वामीजी ठहरे थे) दिन-रात आध्यात्मिक आनंद का वातावरण गूँजता रहा।

गिरनार यात्रा

राजकोट से सोनगढ़ लौटते समय स्वामीजी गिरिराज गिरनारतीर्थ की यात्रा करने पधारे और उस पवित्र नेमगिरि पर लगभग ३०० भक्तों के साथ तीन दिन तक रहे। वहाँ दिगम्बर जिनमंदिर में हुई अद्‌भुत भक्ति, सहस्राम्रवन में मची हुई भक्ति की धुन और उस समश्रेणी की पाँचवीं टोंक पर पूज्य स्वामीजी जब 'मैं एक शुद्ध सदा अरूपी, ज्ञानदर्शनमय खरे!' आदि पद परम अध्यात्मरस में सराबोर होकर गवाते थे, उस समय का शांत आध्यात्मिक वातावरण—इन सबके धन्य स्मरण तो जीवनभर भक्तों के स्मरण-पट पर अंकित रहेंगे।

राजकोट जाते हुए तथा वहाँ से लौटते समय पूज्य स्वामीजी मार्ग में आनेवाले अनेक नगरों में वीतरागप्रणीत सद्धर्म का डंका बजाते गये और अनेक सत्पात्रों के कर्णपट खोलते गये। गाँव-गाँव में लोगों की भक्ति स्वामीजी के प्रति उल्लसित हो उठती थी और लाठी, अमरेली आदि बड़े नगरों में अत्यंत भव्य स्वागत होता था। स्वामीजी का प्रभावना उदय देखकर, जिस काल तीर्थंकरदेव विचरते होंगे, उस धर्मकाल में धर्म का भक्ति का, अध्यात्म का कैसा वातावरण छा जाता होगा। उसका दृश्य आँखों के समक्ष उपस्थित हो जाता था।

श्री सीमंधर भगवान की प्रतिष्ठा और अपूर्व भक्ति

संवत् १९९६ के वैशाख में स्वामीजी का पवित्र आगमन सोनगढ़ में हुआ और तुरंत ही राजकोट निवासी सेठ श्री कालीदास राघवजी जसाणी के भक्तिवान सुपुत्रों ने श्री स्वाध्यायमंदिर के निकट श्री सीमंधरस्वामी के जिनमंदिर निर्माण का कार्य प्रारंभ करवा दिया, जिसमें श्री सीमंधर भगवान की अति भाववाही मनोज्ञ प्रतिमाजी के उपरांत श्री शांतिनाथ आदि अन्य भगवंतों की भाववाही प्रतिमाजी की प्रतिष्ठा पंचकल्याणक विधिपूर्वक संवत् १९९७ के फाल्गुन शुक्ला दूज के शुभदिन हुई। प्रतिष्ठा महोत्सव में बाहर से लगभग १५०० लोगों ने भाग किया था। प्रतिष्ठा महोत्सव के आठ दिनों तक पूज्य स्वामी के मुख से भक्तिरस पूर्ण अलौकिक वाणी निकलती रही। लोगों में भी अत्यंत उत्साह था। प्रतिष्ठा से कुछ दिन पूर्व श्री सीमंधर भगवान के प्रथम दर्शनों से पूज्य स्वामीजी की आँखों से आँसू बहने लगे थे। सीमंधर भगवान प्रथम मंदिर में पधारे, तब पूज्य स्वामीजी को भक्तिरस की मस्ती चढ़ गई और सारा शरीर भक्तिरस के मूर्तस्वरूप समान शांत.. शांत निश्चेष्ट भासित होने लगा। गुरुदेव से साष्टांग नमस्कार हो गया और भक्तिरस में अत्यंत एकाग्रता के कारण शरीर दो-तीन मिनट तक ज्यों का

त्यों निश्चेष्टरूप से पड़ा रहा। भक्ति का वह अद्‌भुत दृश्य, पास खड़े हुए मुमुक्षुओं से मानों सहन नहीं हो रहा था; उनके नेत्रों में आँसू और हृदय में भक्ति उमड़ पड़ी। स्वामीजी ने अपने पवित्र हाथों से प्रतिष्ठा भी ऐसे अपूर्व भाव से की थी मानों भक्तिभाव में तल्लीन होकर शरीर की सुध भूल गये हों।

जिनमंदिर में दोपहर के व्याख्यान के पश्चात् प्रतिदिन आधे घंटे तक भक्ति होती है। भक्ति में पूज्य स्वामीजी भी उपस्थित रहते हैं। प्रवचन सुनते हुए आत्मा के सूक्ष्म स्वरूप के प्रणेता वीतराग भगवान का माहात्म्य हृदय में स्फुरित होता ही है, इसलिए प्रवचन से उठकर तुरंत जिनमंदिर में भक्ति करते हुए वीतरागदेव के प्रति पात्र जीवों को अद्‌भुत भाव उल्लसित होता है। इसप्रकार जिनमंदिर ज्ञान एवं भक्ति के सुंदर समन्वय का निमित्त बना है।

श्री सीमंधर भगवान के समवसरण का दृश्य

श्री जिनमंदिर का निर्माण होने के एक ही वर्ष बाद कुछ मुमुक्षु भाईयों द्वारा जिनमंदिर के निकट ही श्री समवसरण मंदिर का निर्माण हुआ। जिसमें श्री सीमंधर भगवान की अति भाववाही चतुर्मुख प्रतिमाजी विराजमान हैं। सुंदर आठ भूमि, कोट, (मुनि, आर्यिका, देव, मनुष्य, तिर्यंचादि की सभाओं सहित) श्रीमंडप, तीन पीठिका, कमल, चँवर, छत्र, अशोक वृक्ष, विमान आदि की रचना शास्त्रोक्त विधि अनुसार अति आकर्षक है। मुनियों की सभा में श्री सीमंधर भगवान के समक्ष हाथ जोड़कर खड़े हुए श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव की प्रतिमाजी अति मनोज्ञ एवं भाववाही है। समवसरण मंदिर का प्रतिष्ठा-महोत्सव संवत् १९९८ में ज्येष्ठ कृष्णा ६ के शुभदिन हुआ था। इस अवसर पर बाहर से लगभग दो हजार स्त्री-पुरुष आये थे। श्री समवसरण के दर्शन करते हुए वह दृश्य आँखों के समक्ष खड़ा हो जाता है जब श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव सर्वज्ञ वीतराग श्री सीमंधर भगवान के समवसरण में गये थे। तथा उससे सम्बद्ध अनेक पवित्र भाव हृदय में स्फुरित होने से मुमुक्षु का हृदय भक्ति एवं उल्लास से छलक उठता है। श्री समवसरण-मंदिर बन जाने से मुमुक्षुओं को अपने अंतर का एक अति प्रिय प्रसंग दृष्टिगोचर करने का निमित्त प्राप्त हुआ है।

ब्रह्मचर्याश्रम

संवत् १९९८ में भाद्रपद शुक्ला पंचमी के दिन सोनगढ़ में श्री सनातन जैन ब्रह्मचर्याश्रम की स्थापना की गई है। उसमें तीन वर्ष का पाठ्यक्रम रखा गया है। करीब दस ब्रह्मचारी उसमें

भर्ती हुए हैं। उसमें भर्ती होनेवाले ब्रह्मचारी तीन वर्ष रहकर प्रतिदिन तीन घंटे तक पाठ्यक्रम में रखी गई पुस्तकों की शिक्षा प्राप्त करते हैं; और उस प्राप्त की हुई शिक्षा का एकांत में बैठकर स्वाध्याय द्वारा दृढ़ करते हैं तथा पूज्य स्वामीजी के प्रवचन, भक्ति आदि में नियमित भाग लेते हैं;—इसप्रकार पूरा दिन धार्मिक वातावरण में व्यतीत करते हैं।

राजकोट की ओर विहार

राजकोट के श्रावकों का विशेष आग्रह होने के कारण तथा प्रभावना उदय होने से पूज्य स्वामीजी ने संवत् १९९९ में फाल्गुन शुक्ला पंचमी के दिन पुनः सोनगढ़ से वढवाण होते हुए राजकोट की ओर विहार किया। अमृत बरसाते महामेघ की भाँति मार्ग में आनेवाले प्रत्येक नगर में परमार्थ-अमृत की मूसलधार वर्षा करते जाते हैं और अनेक तृषित जीवों की तृषा छिपाते जाते हैं। हजारों भाग्यवार जीवन (जैन और जैनेतर) उस अमृतवर्षा को झेलकर संतुष्ट होते हैं। जैनेतर भी स्वामीजी का आध्यात्मिक उपदेश सुनकर आश्चर्यचकित हो जाते हैं। जैनदर्शन में मात्र बाह्यक्रिया का ही प्रतिपादन नहीं है परंतु वह सूक्ष्म तत्त्वज्ञान से भरपूर है—ऐसा समझने पर उन्हें जैनदर्शन के प्रति बहुमान प्रगट होता है। गाँव-गाँव में बालक, युवा एवं वृद्धों में, जैनों एवं जैनेतरों में स्वामीजी आत्मविचार का प्रबल आन्दोलन फैलाते जाते हैं और 'इस अमूल्य मनुष्यभव में यदि जीव ने शरीर, मन, वाणी से पार ऐसे परमतत्त्व की प्रतीति न की, उसकी रुचि भी न की, तो यह मनुष्यभव निष्फल है'—ऐसी घोषणा करते जाते हैं।

उन अमृतसिंचक योगिराज ने काठियावाड के बाहर विचरण नहीं किया है। यदि वे अन्य प्रदेशों में विहार करें तो सारे भारत में धर्म की प्रभावना करके हजारों तृषातुर जीवों की तृषा छिपा सकते हैं, ऐसी अद्‌भुत शक्ति उनमें दिखायी देती है।

[संवत् २०२५ तक तीर्थयात्रा के निमित्त से तथा जिनबिम्ब प्रतिष्ठा आदि हेतु से समस्त भारतवर्ष में पूज्य स्वामीजी के अनेक मंगलविहार हुए हैं और उन प्रसंगों पर उन्होंने स्वानुभवगर्भित आध्यात्मिक प्रवचनों द्वारा समस्त जैनजगत को हिलाकर जिनेन्द्रप्रणीत अध्यात्ममार्ग के प्रति जागृत किया है। तथा दिगम्बर जैन मार्ग की स्वानुभव प्रधानता को जैनजगत में गुंजित किया है। इसप्रकार भारतवर्ष के अनेक अध्यात्मपिपासु जीवों की पिपासा छिपाकर पूज्य स्वामीजी ने उन्हें नवजीवन प्रदान किया है।]

काठियावाड़ का गौरव

ऐसी अद्‌भुत शक्ति के धारक पवित्रात्मा श्री कानजीस्वामी काठियावाड की महा प्रतिभाशाली विभूति हैं। उनके परिचय में आनेवाले पर उनके प्रतिभासंपन्न व्यक्तित्व का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। वे अनेक सद्‌गुणों से अलंकृत हैं। उनको कुशाग्रबुद्धि प्रत्येक वस्तु के हार्द में उतर जाती है। उनकी स्मरणशक्ति वर्षों की बात को तिथि वार सहित याद रख सकती है। उनका हृदय वज्र से भी कठोर एवं कुसुम से कोमल है। वे अवगुण के समक्ष अडिग होने पर भी, थोड़ा सा गुण देखते ही झुक जाते हैं। बालब्रह्मचारी कानजी स्वामी एक अध्यात्ममस्त आत्मानुभवी पुरुष हैं। उनकी प्रत्येक नसें में अध्यात्म की मस्ती व्याप्त हो गई है। उनके प्रत्येक शब्द में आत्मानुभव झलकता है। उनकी साँस-साँस में 'वीतराग-वीतराग!' की ध्वनि उठती है। कानजीस्वामी काठियावाड़ का अद्वितीय रत्न है। काठियावाड़ कानजीस्वामी से गौरवान्वित है।

यहाँ विक्रम की बीसवीं सदी तक का स्वामीजी का जीवन-परिचय आपने पढ़ा। तत्पश्चात् इक्कीसवीं सदी के कुछ मुख्य प्रसंगों का आलेखन अब आगे देखिये।

अध्यात्म संत श्री कानजीस्वामी

लेखक - ब्रह्मचारी हरिलाल जैन (जीवन परिचय भाग-२)

पूज्य स्वामीजी के जीवन प्रसंग और उनके प्रताप से हुए शासन प्रभावना के महान कार्यों का विवरण यहाँ दिया जा रहा है। पूज्य स्वामीजी का जीवन किसलिये दिया जा रहा है? उनके जीवन में इतने सब मुमुक्षु किसलिये रस लेते हैं? एक ही कारण है कि उनके जीवन में से हमको आत्महित साधने का मार्ग मिलता है, उनका जीवन हमको संसार की तुच्छता और धर्म की महत्ता समझाता है, उनका पवित्र जीवन किसी पुराण पुरुष के पूर्व जीवन की झाँकी कराता है, आत्मा को साधने के लिये जीव की कितनी तैयारी होनी चाहिए—वह उनका जीवन बतलाता है। ऐसे महापुरुष के अंतरंग जीवन की संपूर्ण पहिचान करने के लिये अंतर की कोई भिन्न दृष्टि होनी चाहिये। तथा ऐसी पहिचान को करनेवाले तो विरले ही होते हैं। एक निकटवर्ती चरणसेवक को उनके जो जीवनप्रसंग देखने या सुनने को मिले, उसमें से यत्किंचित् उल्लेखनीय प्रसंग यहाँ दिये जा रहे हैं।

संवत् १९४६, वैशाख सुदी दोज को जब उमराला में उनका जन्म हुआ तभी 'आत्मा की शोध' के संस्कार तथा आत्मिक झंकार साथ में लेकर आये थे। उनके जीवन का प्रवाह प्रारंभ से ही आत्मशोध की ओर बहता था। इस दिशा में निरंतर लगन द्वारा अंतर के आत्मबल से जिसप्रकार सत्य की खोज की, जिसप्रकार आत्मा की मुक्ति का निशंकमार्ग ढूँढ़ा तथा जिसतरह जगत के मुमुक्षु जीवों के लिये इस मार्ग को स्पष्ट किया, उसे देखने पर आश्चर्य, आनंद तथा बहुमान के साथ मुमुक्षुओं के हृदय में पूज्य स्वामीजी के जीवन का आदर्श अंकित हो जाता है। पूज्य स्वामीजी के जन्मकाल की परिस्थिति देखें तो—

'ऐसे इस कलिकाल में जगत के कुछ पुण्य शेष थे,
जिज्ञासु-हृदयों थे तरसते, सद्वस्तु को प्राप्त करने;
ऐसे प्रभाव से भरत में ओ कहान तू उतरे,
अंधकार में डूबते अखंड सत् को तू जीवंत करे।'

पूज्य स्वामीजी के जन्म से युग में परिवर्तन होने लगा, रागपोषक, रूढ़िगत क्रियाकांड के स्थान अध्यात्म ज्ञान का और जिनेन्द्र भक्ति का युग प्रारंभ होने लगा। उजमबा को कहाँ कल्पना थी कि स्वयं जिसको रेशम की डोरी से झुलाती है, वह कुँवर एकबार समस्त भारत को अध्यात्मरस के झूले में झुलायेगा। जब वे दो वर्ष के थे, तब उनकी बहिन 'हरि' उनको गोद में लेकर मकान की अट्टालिका की खिड़की में बैठती थी, इतना पूज्य स्वामीजी को स्मरण में आता है। उस समय आँगन में से ऊँची दृष्टि करने पर मकान की जिस खिड़की में से कहान कुँवर देखते, आज उसी खिड़की में सीमंधरनाथ के दर्शन होते हैं। कहाँ उस समय के स्थानकवासी का घर, और कहाँ आज का सीमंधर जिन-चैत्यालय। जिनके पुण्य प्रताप से एक जूना-पुराना घर सुंदर जिनमंदिर के रूप में परिवर्तित हो गया, उनके प्रताप से आत्मा का रूप भी परमात्मरूप में परिवर्तित होने लगे तो क्या आश्चर्य!! वास्तव में पूज्य स्वामीजी ने आत्मसाधना का अध्यात्मपंथ प्रगट करके भारतवर्ष के कोने-कोने से अनेक जीवों को जागृत किया है। सौराष्ट्र में तो दिगम्बर जैनधर्म का नवसर्जन उन्हीं के द्वारा हुआ है।

सौराष्ट्र में तो दिगम्बर जैनधर्म को 'कानजीस्वामी का धर्म'—ऐसा कहकर लोग पहिचानने लगे—इस पर से ज्ञात होता है कि दिगम्बर जैनधर्म की प्रभावना करने के लिये उनकी कितनी विशेष प्रसिद्धि है। पूज्य स्वामीजी द्वारा स्वसन्मुखता से खोजा हुआ परम सत्य आत्मामर्ग दिगम्बर जैनधर्म जैसे-जैसे प्रसिद्ध होता गया, वैसे-वैसे अधिक से अधिक जिज्ञासु जीव उनके प्रति आकर्षित होते गये, और जगह-जगह मुमुक्षु-मंडलों की स्थापना हुई। संप्रदाय त्याग के पश्चात् उठा हुआ तूफान शांत हो गया और पूज्य स्वामीजी की ख्याति दिन-प्रतिदिन बढ़ती गई।

धार्मिक शिक्षण वर्ग

मात्र गृहस्थ ही नहीं परंतु छोटे-छोटे बालक भी पूज्य स्वामीजी के तत्त्वज्ञान में उत्साह से भाग लेते हैं; इसलिये विद्यार्थी ग्रीष्मावकाश की दो माह की छुट्टियों का सदुपयोग करके तत्त्वज्ञान प्राप्त करें—उस हेतु संवत् १९९७ से प्रति वर्ष धार्मिक शिक्षण-शिविर का आयोजन किया जाता है—जिसमें सैकड़ों विद्यार्थी उत्साह से भाग लेते हैं, उनकी परीक्षाएँ भी ली लाती हैं तथा इनाम भी दिये हैं। उसीप्रकार संवत् २००४ से प्रति वर्ष भाद्रपद में प्रौढ़ शिक्षणशिविर चलता है, उसमें भी अनेक नगरों से सैकड़ों जिज्ञासु आकर लाभ लेते हैं।

'आत्मधर्म' मासिक पत्र का प्रकाशन

पूज्य स्वामीजी के अनुयायी सौराष्ट्र में तथा देशभर में जगह-जगह फैले हुए हैं और वे नियमित पूज्य स्वामीजी का संदेश प्राप्त करने के लिये आतुर रहते हैं। इसलिये संवत् २००० के मगसिर महीने से 'आत्मधर्म' मासिक का प्रकाशन प्रारंभ हुआ; उसके द्वारा पूज्य स्वामीजी का संदेश भारतवर्ष में प्रसरने लगा तथा अनेक जिज्ञासु जीव आकर्षित होने लगे। सेठ हुकुमचंदजी जैसे अनेक महानुभाव भी 'आत्मधर्म' द्वारा सोनगढ़ की ओर आकर्षित हुए। उनको ऐसा प्रमोद आया कि उन्होंने 'आत्मधर्म' का पच्चीस वर्ष का चंदा एक साथ संस्था को भेज दिया तथा हिन्दी भाषा में उसके प्रकाशन के लिये भी १००१ रुपये भेजे। भारत के अध्यात्म-साहित्य में 'आत्मधर्म' का स्थान बहुत ही ऊँचा है, अनेक पत्र-पत्रिकाएँ तथा साहित्यकार उसका अनुकरण कर रहे हैं। पूज्य स्वामीजी का संदेश प्रसारित करने में साहित्य क्षेत्र में 'आत्मधर्म' का स्थान महान है। अध्यात्म प्रेमी जिज्ञासु-समाज 'आत्मधर्म' के प्रति विशेष प्रेम रखती है। तदुपरांत आध्यात्मिक-साहित्य का प्रकाशन भी सोनगढ़ संस्था की ओर से विस्तृतरूप से हो रहा है; श्री समयसार, प्रवचनसार आदि अनेक ग्रंथ (जिनकी कुल संख्या सात लाख होती है) आज तक प्रकाशित हो चुके हैं।

ब्रह्मचर्याश्रम

पूज्य स्वामीजी की शीतल छत्रछाया में तथा पवित्र चरणसान्निध्य में रहकर अध्यात्म-अभ्यास करने के लिये कितने ही ब्रह्मचारी भाई सोनगढ़ में ही स्थायीरूप से रहने लगे... स्वामीजी समस्त ब्रह्मचारी बालकों के प्रति विशेष वात्सल्य रखते हैं; छोटे-छोटे ब्रह्मचारी बालक स्वामीजी की छत्रछाया में आनंद किल्लोल करते थे, स्वामीजी के साथ घूमते समय तो अनुपम आनंद आता था। अनेक कुमार भाईयों ने जीवनपर्यंत स्वामीजी के चरण में रहने के हेतु से स्वामीजी के पास आजीवन-ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा अंगीकार की है। इसके अतिरिक्त अन्य जिन गृहस्थों ने स्वामीजी के पास सपत्नीक आजीवन-ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा ली है, उनकी संख्या तो बहुत बड़ी है।

जिनवाणी के प्रति अत्यंत बहुमान

संवत् २००० में जब पूज्य स्वामीजी विहार में थे, उस समय कषायपाहुड़ सूत्र सहित जयधवला टीका-शास्त्र का प्रथम भाग प्रकाशित हुआ। वह हाथ में आने पर तथा पढ़ने पर

पूज्य स्वामीजी को उस जिनवाणी के प्रति ऐसा अतिशय बहुमान तथा प्रमोद आया मानो अभी-अभी सुनी हुई दिव्यध्वनि पुनः ग्रंथरूप में देखने को मिली हो; और गाँव-गाँव राजकोट, वींछिया, लाठी आदि में मुमुक्षु मंडलों द्वारा उत्साह से उसका श्रुत-पूजन हुआ—जिसमें उन दिनों सैकड़ों रुपये इकट्ठे हुए; प्रवचन में भी उसका कुछ-कुछ भाग पूज्य स्वामीजी कहते, जिसे सुनकर मुमुक्षुओं को अत्यंत प्रमोद होता। आजकल तो सोनगढ़ में कितने भाई-बहिन धवल-जयधवल की भी स्वाध्याय करते हैं।

राजकोट में संवत् १९९९ का चातुर्मास पूर्ण करके सोनगढ़ आते समय पूज्य स्वामीजी ने बीच में अनेक नगरों को पावन किया। प्रत्येक नगर की जनता जो उत्साह दिखलाती वह अद्‌भुत था। 'कानजीस्वामी' का नाम सुनते ही गाँव के लोग उनके दर्शन की जिज्ञासा को रोक नहीं सकते थे तथा गाँव में कोई विचित्र उत्सव का वातावरण फैल जाता था।

यह संतों का धाम है

पूज्य स्वामीजी के प्रताप से सोनगढ़ की स्थिति में धीरे-धीरे परिवर्तन होने लगा। सोनगढ़ का शांत आध्यात्मिक वातावरण और संपूर्ण धार्मिक कार्यक्रम देखकर बाहर से आये हुए जिज्ञासु जीव मुग्ध हो जाते हैं, तथा सोनगढ़ में जितने दिन रहते हैं, उतने दिन बाहर की दुनिया के वातावरण को लगभग भूल ही जाते हैं, कोई नया ही जीवन उनको प्राप्त हुआ, ऐसा लगता है। शीत प्रदेश के लोग तो कहते हैं कि—अरे, इतनी सख्त गर्मी भी, अध्यात्म की शीतलता में रहनेवाले इन मुमुक्षुओं को मानों असर ही नहीं करती। धर्मात्मा, विद्वान ब्रह्मचारी, भाई-बहिन, श्रीमान, वृद्ध से लेकर बालक तक के तत्त्वप्रेमी जिज्ञासु संसार की अनेक प्रतिकूलताओं के बीच अध्यात्म प्रेम से अडिग रहते हुए संसार के संबंधों को ठुकराकर संत की छाया में सोनगढ़ रहनेवाले जिज्ञासु अपनी-अपनी विविध विशेषताएं रखते हैं, इसप्रकार सोनगढ़ का 'जीवंत वैभव' अपार है, परंतु यहाँ किसी का व्यक्तिगत परिचय देना हम उचित नहीं मानते; पूज्य स्वामीजी की शोभा में समस्त सोनगढ़ की शोभा समा जाती है।

सोनगढ़ में जो उत्सव होते हैं, वे अद्‌भुत भावों से भरपूर होते हैं; मात्र रूढ़िगत रीति से नहीं, परंतु उस-उस उत्सव के अनुरूप भावभरे वातावरण में मनाये जाते हैं। प्रतिष्ठा के दिवस या पर्यूषण के दिवस, श्रुतपंचमी या वीरशासन जयंती, नंदीश्वर अष्टाह्निका या महावीर जन्मोत्सव, दीपावली या रथयात्रा, सिद्धचक्र विधान आदि उत्सव अपनी विशिष्ट शैली से

मनाये जाते हैं। दैनिक कार्यक्रम जैसे कि—दर्शन-पूजन, प्रवचन, भक्ति, तत्त्वचर्चा, शास्त्र स्वाध्याय आदि में भी सर्व जिज्ञासु जीव उत्साहपूर्वक भाग लेते हैं। प्रातः से लेकर रात्रि तक ऐसी उच्च प्रवृत्तियों में सारा दिन किसप्रकार व्यतीत हो जाता है, उसका पता भी नहीं लगता। कुछ दिन यहाँ रहनेवाले मुमुक्षु को अन्य कहीं जाना नहीं रुचता। वास्तव में अध्यात्म की साधना के अनुरूप शांति संतों के इस धाम में भरी है। यहाँ आने पर ही मुमुक्षु को हृदय में से ध्वनि उठती है कि 'यह संतों का धाम है।'

सर सेठ हुकुमचंदजी सोनगढ़ में

जैन समाज के मुख्य नेता, इंदौर के श्री हुकुमचंदजी सेठ पूज्य स्वामीजी की अध्यात्म-प्रसिद्धि सुनकर, तथा उनके द्वारा जैनधर्म की महान प्रभावना देखकर, संवत् २००१ के ज्येष्ठ कृष्णा ६ को पूज्य स्वामीजी के दर्शन तथा सत्संगार्थ अनेक पंडितों सहित सोनगढ़ आये; उनका पूज्य स्वामीजी से यह पहला ही समागम था। पूज्य स्वामीजी के प्रवचन सुनकर और भक्ति आदि का अध्यात्मरस भरा वातावरण देखकर वे बहुत ही प्रसन्न हुए, तथा स्वाध्यायमंदिर को रुपया २५००१ रुपये 'की उदार भेंट दी' वे सोनगढ़ तीन दिन रहे और ज्येष्ठ कृष्णा छठ से अष्टमी के उत्सव में भाग लिया। समवसरण की रचना देखकर उनको अत्यंत प्रसन्नता हुई।

भगवान श्री कुन्दकुन्द-प्रवचन मंडप

दिन-प्रतिदिन बढ़ती हुई जिज्ञासुओं की संख्या के लिये उत्सव के दिनों में स्वाध्यायमंदिर छोटा पड़ने लगा। इसलिये उससे चार गुना (पाँच हजार चौसठ फीट का) 'भगवान श्री कुन्दकुन्द प्रवचन-मंडप' बनाने का निर्णय किया गया। संवत् २००२ की मगसिर शुक्ला दसवीं को श्री हुकुमचंदजी सेठ के हस्त से अत्यंत आनंदोल्लासपूर्वक प्रवचन-मंडप का शिलान्यास हुआ। श्री हुकुमचंदजी सेठ ने ११००१ रुपये अर्पण किये तथा करीब सवालाख रुपया एकत्रित हुआ। सेठजी ने कहा कि—'इन महाराजजी के उपदेश के प्रभाव से बहुत जीवों को लाभ हुआ है। मेरा भी अहोभाग्य है कि मुझे महाराजश्री के चरणों की सेवा का लाभ प्राप्त हुआ है। मेरी तो भावना है कि मेरा समाधि-मरण महाराजजी के समीप में हो। आपके पास तो मोक्ष जाने का सीधा रास्ता है।' जिनमंदिर में जिनेन्द्र-भक्ति होती हुई देखकर सेठजी का हृदय उल्लसित हो उठता था।

संवत् २००३ के चैत्र कृष्णा एकम को भगवान श्री कुन्दकुन्द-प्रवचन-मंडप का

उद्घाटन सेठ श्री हुकुमचंदजी के शुभहस्त से अत्यंत उल्लास भरे वातावरण में हुआ। सेठजी ने उस समय के प्रवास को 'सोनगढ़-यात्रा' नाम दिया तथा, उनके साथ करीब ४५ यात्री थे। उस अवसर पर सोनगढ़ में लगभग तीन हजार मुमुक्षु एकत्रित हुए थे। अनेक पौराणिक चित्रों तथा सैद्धांतिक सूत्रों से सुशोभित मंडप के उद्घाटन के समय ३५००० रुपये दान की घोषणा के साथ सेठजी ने कहा था कि—'मैं अपने हृदय में ऐसा समझता हूँ कि मेरी सब संपत्ति इस सद्धर्म की प्रभावना के लिये न्योछावर कर दूँ तो भी कम है। उनके साथ आये हुए पंडित श्री देवकीनंदनजी आदि ने भी उत्साह तथा प्रमोद प्रगट किया था। पंडितजी ने तो कहा कि 'हमारा तो सब भूलवाला था, आपने ही सत्य समझाया है।'

वींछिया में मुहूर्त करते हैं

अब सोनगढ़ के बाद सौराष्ट्र में अन्य अनेक गाँवों में भी दिगम्बर जिनमंदिरों की नींव डलना प्रारंभ हुआ। उनमें सर्वप्रथम संवत् २००३ के चैत्र कृष्णा त्रीज को सेठ श्री हुकुमचंदजी के हस्त से वींछिया में दिगम्बर जिनमंदिर का शिलान्यास हुआ। उस प्रसंग के भाषण में उन्होंने कहा कि ऐसे पवित्र धर्म प्रसंग में भाग लेने के लिये मैं दिन-रात तैयार हूँ। मेरी तो भावना है कि जैनधर्म का डंका सारे भारतवर्ष में बज जाये। आप लोगों का अति उत्साह तथा उत्कृष्ट धर्म प्रेम देखकर मेरे हृदय में हर्ष नहीं समाता। जीवन में ऐसी धर्म भक्ति नहीं देखी! मुझे याद करोगें तब ऐसे कार्यों में अधी रात को उठकर भी आने के लिये तैयार हूँ।

सोनगढ़ में विद्वत्परिषद का अधिवेशन

संवत् २००३ के चैत्र में सोनगढ़ में भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद का वार्षिक अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन का प्रसंग बहुत ही प्रभावशाली था। अधिवेशन में काशी, बनारस, आगरा, देहली, कटनी, सागर, लखनऊ आदि से ३२ जितने 'विद्वान' भाई पधारे थे, वे सब विद्वान पूज्य स्वामीजी के प्रभाव तथा सोनगढ़ के अध्यात्म वातावरण को देखकर बहुत प्रसन्न हुए थे। विद्वतपरिषद ने पूज्य श्री कानजीस्वामी के प्रति अभिनंदन का एक विशेष प्रस्ताव किया था। श्रीमान् सेठ हुकुमचंदजी के आगमन से तथा विद्वत्परिषद के सम्मेलन के पश्चात् पूज्य स्वामीजी का प्रभाव और अध्यात्म का प्रचार भारत में शीघ्रता से फैलने लगा। सौराष्ट्र में जगह-जगह जिनमंदिरों की तैयारी होने लगी। तत्त्वज्ञान का प्रचार जैसे-जैसे बढ़ता गया, वैसे-वैसे लोगों की जिज्ञासा भी जागृत होने लगी। सौराष्ट्र के बाहर से भी जिज्ञासु जीव बड़ी

संख्या में सोनगढ़ आकर सत्संग का लाभ लेने लगे।

व...न...या...त्रा

संवत् २००३ की ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा को सोनगढ़ में वनयात्रा का आनंदकारी प्रसंग हुआ। सोनगढ़ में नदी किनारे सैकड़ों आम के वृक्षों का सुंदर वन है। पूज्य स्वामीजी संघ के साथ इस आम्रवन में पधारे और वहाँ वन के उपशांत वातावरण में कुन्दकुन्दादिमुनि भगवंतों का स्मरण करके वैराग्यमय चारित्रभावनायें भायीं। प्रवचनसार का गुजराती अनुवाद उस समय होता था, उसमें से चारित्रभावना की प्रथम दो गाथाओं का गुजराती अनुवाद भाईश्री हिम्मतभाई ने पढ़ा, उसमें आचार्यदेव कहते हैं कि—चारित्र अंगीकार करने का जो यथानुभूत मार्ग... उसके प्रणेता हम यह खड़े हैं। यह सुनकर सबको बहुत हर्ष हुआ, मुनिमार्ग के प्रति भक्ति जागृत हुई। पूज्य स्वामीजी ने आम्रवन में श्रीमद् राजचंद्रजी कृत 'अपूर्व अवसर' काव्य गवाकर मुनिपद की भावना भायी। बेनश्री-बेन ने मुनिवरों का स्मरणपूर्वक वैराग्यमय भक्ति करवाई थी। पूज्य स्वामीजी के साथ सोनगढ़ का वह वनविहार आज भी वैराग्य की मधुर ऊर्मियाँ जागृत करता है।

अध्यात्म प्रचार की भावनारूप प्रस्ताव

अब पूज्य स्वामीजी का प्रभाव सौराष्ट्र के बाहर दूर-दूर तक शीघ्रता से फैलने लगा तथा ऐसा कल्याणकारी अध्यात्मज्ञान सारे जगत में प्रचाररूप हो—ऐसी भावना बहुत लोगों को होने लगी। मैनपुरी की जैन साहित्य सभा ने तो इस संबंधी में एक प्रस्ताव किया, (इस प्रस्ताव से पूर्व सोनगढ़ में उत्तरप्रदेश की इस मैनपुरी का नाम भी किसी ने सुना नहीं था) वह प्रस्ताव निम्नप्रकार था:—

'श्री जैन साहित्य सभा-मैनपुरी ऐसा प्रस्ताव करती है कि सुवर्णपुरी सोनगढ़ में एक वायु प्रवचनस्थान (ब्राड कास्टिंग स्टेशन) स्थापित करने में आये, जिसके द्वारा वर्तमान समय के उत्कृष्ट जैन तत्त्ववेत्ता श्री कानजीस्वामी के परम उपकारी अध्यात्मिक प्रवचन सर्व जगत को सरलता से मिल सकें और जिससे जगत के मुमुक्षुओं का कल्याण हो।'

महताबचंद जैन
मंत्री,
श्री जैन साहित्य सभा, मैनपुरी

तारीख १४ जून १९४७
सर्वानुमति से पास

विशिष्ट जन्म जयंती

संवत् २००४ में सोनगढ़ में मनाया गया पूज्य स्वामीजी का ५९वाँ जन्मोत्सव एक विशिष्ट आनंद प्रसंग था। भूत-भविष्य के साथ संधि रखेनवाला एक आश्चर्यकारी मंगल-प्रसंग बना; तत्संबंधी महान हर्षोल्लास के कारण इस उत्सव में भी सबको हार्दिक उत्साह था। तीन दिन के इस महान उत्सव के समय (सोनगढ़ में उन दिनों बिजली का प्रबंध न होने पर भी) घर-घर में दीपकों की ज्योति जगमगा उठी, इतने दीपकों की रोशनी सोनगढ़ में पहली बार हुई होगी। अनेक मुख्य अतिथियों ने भाषणों द्वारा परमोपकारी गुरु-महिमा प्रसिद्ध करके प्रमोद व्यक्त किया; रात्रि में भी स्वाध्याय मंदिर के चौक में गुरुभक्ति का विशेष कार्यक्रम था; आनंदमय नाटक तथा भक्तियों द्वारा इस उत्सव में आनंद की ऊर्मियाँ जागृत हुई।

छह कुमारिका बहिनों की ब्रह्मचर्य-प्रतिज्ञा

संवत् २००५ की कार्तिक शुक्ला तेरस के दिन एक नवीन भव्य प्रसंब बना। सोनगढ़ में वर्षों से पूज्य बेनश्री-बेन की मंगलछाया में रहकर तथा पूज्य स्वामीजी के प्रवचनों से प्रभावित होती (लगभग २२ वर्ष की) छह कुमारिका बहिनों ने एक साथ आजीवन ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा पूज्य स्वामीजी के समक्ष अंगीकार की। इस प्रसंग को समाज ने विशेष उल्लास से मनाया तथा बहिनों के लिये ब्रह्मचर्याश्रम की भी स्थापना हुई। एक साथ में छह कुमारिका बहिनों की ब्रह्मचर्य-प्रतिज्ञा का यह अपूर्व प्रसंग पूज्य स्वामीजी जो अतीन्द्रिय आत्मतत्त्व की सन्मुखता का उपदेश दे रहे हैं, उसका ही एक छोटा-सा फल है। पूज्य स्वामीजी के आत्मस्पर्शी उपदेश का श्रवण तथा मंथन करनेवालों के जीवन में वैराग्यभावों का सहज ही पोषण होता जाता है, उसमें और पूज्य बहिनश्री चम्पाबहिन और श्री शांताबहिन जैसे महान वैरागी धर्मात्माओं की छाया में दिन-रात ज्ञान-वैराग्य का पोषण होता रहता है। माता जैसी वात्सल्यवंती उनकी दृष्टि बहिनों के जीवन में महान शरणरूप है। (तत्पश्चात् इसीप्रकार अन्य १४, ८ और ९ कुमारिका बहिनों ने एक ही साथ ब्रह्मचर्य-प्रतिज्ञा ग्रहण की है तथा अन्य अनेक बहिनों की ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा के प्रसंग बने हैं।) आत्महित की साधना के लक्ष से, अहर्निश संतों की छाया में रहने के हेतु से यह ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा ली है, यह एक विशेष आदर्श है। तथा ऐसे आदर्श को ग्रहण करनेवाली पचास जितनी ब्रह्मचारी बहिनें धन्यवाद की पात्र हैं।

'समयसार—भगवान की जय हो'

पूज्य स्वामीजी को कुन्दकुन्द भगवान के प्रति है, उतना ही प्रेम 'समयसार' के प्रति है। समयसार उनका जीवनसाथी हो, इसतरह लगभग प्रतिदिन वे पढ़ते रहते हैं। सोलह बार तो उस पर प्रवचन हुए; उसमें से आठवीं बार के प्रवचन ढाई वर्ष तक चले... उनकी पूर्णता कैसे आनंद से हुई, उसे यहाँ बतलाना है। संवत् २००२ की 'श्रुतपंचमी' से प्रारंभ हुए यह प्रवचन संवत् २००५ में पौष कृष्णा अष्टमी को जब पूर्ण हुए, तब अंतिम प्रवचन की पूर्णता करने पर पूज्य स्वामीजी ने कहा कि हे जीवो! अंतर में विश्राम करो अनंत महिमावंत शुद्धात्मभगवान का आज ही अनुभव करो। ज्ञान के दिन (श्रुपंचमी को) प्रारंभ हुआ यह समयसार आज चारित्र के दिन (कुन्दप्रभु की आचार्य पदवी के दिन) पूर्ण होता है। इसलिये जो कार्य श्रुतज्ञान से प्रारंभ हुआ, वह आगे बढ़कर चारित्रदशा प्राप्त करके केवलज्ञान तक पहुँच कर पूर्ण होगा... बोलो समयसार भगवान की... जय हो।' इसप्रकार पूज्य स्वामीजी ने स्वयं केवलज्ञान की प्रतिज्ञा के साथ समयसार के जयकारपूर्वक जब समयसार की पूर्णता की, तब समस्त मुमुक्षु श्रोताजनों ने अत्यंत ही आनंदोल्लास से यह जयकार झेल लिया तथा दूसरी ओर 'सद्धर्म प्रभावक दुंदुभि' का मंगल नाद वातावरण में गूँज उठा।

श्री समयसार की अगाध महिमा का यह एक आश्चर्यकारी प्रसंग था। तत्पश्चात् जब १४वीं बार श्री समयसार पर प्रवचन होने का प्रारंभ हुआ, तब १४००० रुपये के दान की घोषणा हुई। वर्तमान में सोलहवीं बार प्रवचन प्रारंभ हुए हैं।

प्रतिष्ठा-महोत्सव तथा विहार

सोनगढ़ में संवत् १९९७ तथा १९९८ में दो प्रतिष्ठा-महोत्सव होने के बाद सर्वप्रथम संवत् २००५ में वींछिया में पंचकल्याणक-प्रतिष्ठा महोत्सव मनाया गया, तथा इस निमित्त से पूज्य स्वामीजी ने सौराष्ट्र में विहार किया, तब पूज्य स्वामीजी पैदल चलकर विहार करते थे; ब्रह्मचारी बालक उनके साथ रहते थे; प्रतिदिन पाँच सात मील का प्रवास होता था। छोटे गाँवों में उस समय पूज्य स्वामीजी के साथ सारे दिन जो आनंद आता, उसका मधुर स्मरण आज भी आनंद उत्पन्न करता है। उस समय पूज्य स्वामीजी जिस गाँव में पधारते, वहाँ के सब किसान भी उत्सव जैसा मानकर उस दिन अपना कार्य बंद रखते तथा उत्साह से पूज्य स्वामीजी का प्रवचन सुनने आते। इस विहार के बीच पूज्य स्वामीजी उमराला पधारे, तब जन्मभूमिस्थान के उद्धार की योजना तथा फंड का प्रारंभ हुआ। वींछिया जैसे छोटे गाँव में भव्य पंचकल्याणक-

प्रतिष्ठा महोत्सव मनाया। इस महोत्सव में प्रतिष्ठा के लिये पधारे हुए ४२ जिनबिम्बों पर पूज्य स्वामीजी ने पवित्र हस्त कमल से अंकन्यास विधान किया। अहा, उन जिनेन्द्रों का जुलूस हाथी पर नहीं परंतु गाड़ी में बैठकर निकला था-तथापि वे प्रसंग अद्‌भुत एवं आह्लादकारी थे। उस समय पूज्य स्वामीजी के सुहस्त से प्रतिष्ठा कराने के लिये कलकत्ता, इंदौर, मेलसा, कानपुर, मलकापुर, अजमेर आदि अनेक स्थानों से जिनबिम्ब आये थे। उसी वर्ष लाठी शहर में भी श्रुतपंचमी को पंचकल्याणक-प्रतिष्ठा का महान उत्सव था। दूसरे वर्ष (संवत् २००६ में) राजकोट में भी महान प्रतिष्ठा-महोत्सव मनाया, जिसमें एक साथ ३९ जिनबिम्बों की प्रतिष्ठा हुई।

शत्रुंजय सिद्धिधाम की यात्रा

सौराष्ट्र के विहार से वापिस लौटते समय संवत् २००६ के प्रथम अषाढ़ सुदी ४ के दिन पूज्य स्वामीजी ने ८०० जितने यात्रियों के महान संघ सहित शत्रुंजय-सिद्धिधाम की अपूर्व उल्लास सहित (दूसरी बार) यात्रा की। पांडवधाम में भक्ति पूजा तथा प्रवचन हुए।

'सद्‌गुरु-प्रवचन-प्रसाद'

संवत् २००६ की भादों सुदी पंचमी से इस दैनिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ हुआ, वह लगभग छह वर्ष चालू रहा। जिज्ञासुओं को वह प्रिय था, परंतु उसके संचालक श्री अमृतलालभाई का स्वर्गवास हो जाने के बाद उसका प्रकाश बंद हो गया।

अफ्रीका

पूज्य स्वामीजी का प्रभाव कहाँ-कहाँ फैला हुआ है, वह जानने के लिये हमें हिंदुस्तान के बाहर भी दृष्टि डालना पड़ेगी। पूज्य स्वामीजी की प्रकाश किरणें अफ्रीका जैसे अंधेर देश में भी पहुँच गई। ज्यों-ज्यों पूज्य स्वामीजी के प्रवचन साहित्य द्वारा प्रचार बढ़ता गया, त्यों-त्यों देश के कोने-कोने में जिज्ञासु जीव आकर्षित होते गये। इतना ही नहीं देश के मुख्य-मुख्य सभी शहरों में मुमुक्षु-मंडल स्थापित होने लगे। साथ ही रंगून, पडन तथा अफ्रीका में नैरोबी, मोम्बासा आदि शहरों में रहनेवाले गुजराती भाई भी सोनगढ़ के प्रति आकर्षित हुए। अफ्रीका में एकबार आत्मधर्म के ४०० जितने ग्राहक हो गये थे। आज भी अफ्रीका में उत्साह से मुमुक्षु मंडल चल रहा है; तथा जिन प्रतिमा को विराजमान करके प्रतिदिन दर्शन-पूजन-भक्ति करते हैं और वहाँ के मुमुक्षु भाई कभी-कभी सोनगढ़ आकर भी सत्संग का लाभ लेते हैं।

सीमंधरनाथ की प्रतिष्ठा के दस वर्ष

भक्तों की हार्दिक भावना से विदेहीनाथ सीमंधर भगवान संवत् १९९७ में सोनगढ़ पधारे। सीमंधरनाथ की उस प्रतिष्ठा को संवत् २००७ में दस वर्ष पूर्ण होने पर उल्लासकारी अष्टाह्निका-महोत्सव मनाया। सीमंधरनाथ की परम भक्ति से सोनगढ़ का वातावरण गूँज उठा। अहो भगवान! आप साधकों के साथी हो... आपको हृदय में रखकर साधक सिद्धपद को निर्विघ्नरूप से साध रहे हैं। पूज्य स्वामीजी कहते हैं कि 'सीमंधरनाथ की ॐकारध्वनि में से झेलकर कुन्दकुन्दाचार्यदेव जो महान श्रुतामृत ले आये थे, उसी की अल्प प्रसादी यहाँ परोसने में आती है।' पूज्य बेनश्री-बेन को उन विदेहीनाथ के प्रति जो भक्ति उल्लसित होती है, तथा उनकी प्रशांत मुद्रा देख-देखकर उनके हृदय में जो आनंदोर्मि जागृत होती हैं, उनका वर्णन किसप्रकार से हो? विदेहवासी हे सीमंधरनाथ! आप 'सुवर्णधाम में... अथवा तो भक्तों के अंतर में' पधारने के बाद इस भरतभूमि के जिनेन्द्रशासन में अनेकानेक मंगलवृद्धि हुई है। ऐसे महान भक्तिभावों के साथ दसवर्षीय मंगलोत्सव बहुत ही आनंद से मनाया गया था। 'कुन्दकुन्द-श्राविका शाला' का उद्घाटन भी उस बीच में (फाल्गुन कृष्णा तेरस को) हुआ था। अष्टाह्निका-उत्सव के प्रारंभ में, एक भक्ति द्वारा सीमंधरनाथ को संदेश भिजवाया कि 'स्वस्ति श्री विदेहक्षेत्र में विराजमान हे सीमंधर नाथ। भरतक्षेत्र के अपने भक्तों की प्रार्थना स्वीकार करके, शीघ्रातिशीघ्र विहार करके आप सोनगढ़ पधारे... भारत के भक्त आपकी राह देखते हैं....' उस उत्सव प्रसंग में अनेक धार्मिक नाटकों, धार्मिक फिल्म (तीर्थधाम सोनगढ़ की) आदि नये-नये कार्यक्रम थे। पूज्य स्वामीजी के प्रताप से सुवर्णधाम में ऐसे आनंदोत्सव के नये-नये प्रसंग बना ही करते हैं।

श्राविका-ब्रह्मचर्याश्रम का उद्घाटन

संवत् २००६ में कलकत्ता के (लाडनू निवासी) सेठ श्री वछराजजी गंगवाल आदि सोनगढ़ पहली बार आये; तथा पूज्य स्वामीजी के मात्र कुछ दिन के संक्षिप्त परिचय से और पूज्य बेनश्री-बेन का जीवन देखकर वे ऐसे प्रभावित हुए कि तुरंत ही जिनमंदिर के पास विशाल जगह खरीदकर सवालाख रुपये के खर्च से उन्होंने भव्य आश्रम का निर्माण करवाया। उस 'श्री गोगीदेवी दिगम्बर जैन श्राविका-ब्रह्मचर्याश्रम' का उद्घाटन सेठजी के हस्त से संवत् २००८ के माह शुक्ला पंचमी को बोधि समाधिदातार पूज्य स्वामीजी की मंगल आशीषपूर्वक

हुआ। वह उद्घाटन-महोत्सव अति आनंदकारी था। उस दिन श्री महावीरस्वामी की प्रतिमाजी को दिनभर आश्रम में विराजमान किया था। पूज्य स्वामीजी का प्रवचन भी आश्रम में हुआ था। सोनगढ़ में भक्ति-उल्लास और हर्ष का वातावरण फैल गया था, तथा पूज्य बेनश्री-बेन की हितकर छाया में १६ जितनी ब्रह्मचारिणी बहिनों ने आश्रय में निवास किया था। फिर तो क्रमशः बढ़ते-बढ़ते ब्रह्मचारिणी बहिनों की संख्या ५० जितनी हो गई है। आश्रम का वातावरण शांत है और आदर्श महान है।

जैन विद्यार्थीगृह

संवत् २००८, चैत्र कृष्णा तीज से तीन विद्यार्थियों की संख्या से प्रारंभ हुआ। इस विद्यार्थीगृह में आज ७५ जितने विद्यार्थी पढ़ते हैं, धार्मिक ज्ञान का अभ्यास भी करते हैं तथा विद्यार्थीगृह अपना सुंदर स्वतन्त्र मकान रखता है।

मानस्तंभ की तैयारी तथा भव्य महोत्सव

संवत् २००९ तक सौराष्ट्र में कहीं पर भी मानस्तंभ नहीं था, मानस्तंभ किसको कहते हैं—उसका वास्तव में बहुतों को पता भी नहीं था। दस वर्ष पूर्व सोनगढ़ में जिनमंदिर हुआ, तभी से मानस्तंभ की भावना भक्तों के मन में बनी हुई थी, वह इस वर्ष सफल हुई। उसके लिये अत्यंत उत्साहपूर्वक अल्प समय में ही करीब सवालाख रुपये का चंदा हो गया। सौराष्ट्र के लिये वह बिल्कुल नवीन था। एक ओर जयपुर में मानस्तंभ के संगमरमर के सामान का आर्डर दिया गया तथा दूसरी ओर सोनगढ़ में उसके बनने की जोरदार तैयारियाँ होने लगी। जिस दिन तथा जिस समय में पूज्य स्वामीजी ने परिवर्तन किया था, उसके १७ वर्ष बाद ठीक उसी दिन और उसी समय में पूज्य बेनश्री-बेन के सुहस्त से मानस्तंभ की नींव डाली गई। तथा ज्येष्ठ कृष्णा सप्तमी के दिन पूज्य स्वामीजी की मंगल छाया में अत्यंत उल्लासमय वातावरण के बीच पूज्य बेनश्री-बेन ने तथा सेठ श्री नानालालभाई आदि ने उत्साहपूर्वक मानस्तंभ शिलान्यास किया। मानस्तंभ की तीन बड़ी-बड़ी पीठिकाओं के सीमेंट का कार्य सैकड़ों भक्त भाई-बहिनों के हाथ से उमंगपूर्वक प्रारंभ करवाया गया। प्रवचन में स्वामीजी प्रतिदिन मानस्तंभ की महिमा समझाते। उस समय सौराष्ट्र में कितने ही स्थानों पर जिनमंदिर तैयार हुए थे और मुमुक्षुगण प्रतिष्ठा के लिये पूज्य स्वामीजी के पधारने की प्रतीक्षा कर रहे थे। तो दूसरी ओर देशभर में से अनेक छोटे-बड़े जिज्ञासु जीव (त्यागी तथा गृहस्थ) सोनगढ़ आते और पूज्य स्वामीजी के

परिचय से तथा सोनगढ़ के आध्यात्मिक वातावरण से बहुत ही प्रभावित होकर 'धन्य... धन्य बोल उठते।' कुछ लोग कहते थे कि सोनगढ़ तो विदेहधाम जैसा लगता है, तो कोई कहते थे कि वह तो धर्मपुरी है।

जयपुर (मकराना) से छह वेगन भरकर मानस्तंभ के संगमरमर का सामान आया। बीच में दो वेगन गुम हो गये थे तो वे भी समय पर आ गये। अंतिम दो वेगन संवत् २०१० में भाईदूज के दिन आये। उसमें अन्य सामान के उपरांत मानस्तंभ के जिनबिम्ब भी थे। कार्तिक शुक्ला तीज को जिनप्रतिमा का ग्राम में प्रवेश हुआ; तथा मानस्तंभ की पीठिका के संगमरमर का पहला पत्थर उस दिन पूज्य बेनश्री-बेन के सुहस्त से रखा गया। भगवान की बैठक माह शुक्ला एकम को स्थापित की गई तथा बराबर उसी रात्रि को स्वप्न में पूज्य स्वामीजी ने सीमंधरनाथ का अद्भुत दिव्य मंदिर देखा। पश्चात् तो एक के बाद एक पत्थर ऊपर-ऊपर रखते-रखते ६३ फीट तक पहुँच गया। (पूज्य स्वामीजी की उस समय ६३वाँ वर्ष चलता था)

(विशेष अगले अंक में)

शुद्धात्मा ही त्रिकाल उपादेय है।

[राजकोट में नियमसार, गाथा ३८ पर पूज्य स्वामीजी का प्रवचन]

[तारीख २४-३-६९]

यह आत्मा स्वरूप से भगवान है, अतीन्द्रिय परमानंद की मूर्ति है; किन्तु वर्तमान दशा में अपने को भूलकर हेय-उपादेय के विवेक बिना भटक रहा है। यहाँ आचार्यदेव हेय-उपादेयतत्त्व का कथन करते हैं। आत्मा अखंडानंद पूर्णज्ञायक ध्रुवधाम है, उसे पहिचानकर, ध्येय बनाकर, उसी का आदर करना योग्य है। उस अपेक्षा यहाँ, सात तत्त्व को परद्रव्य-बाह्यतत्त्व, हेय बतलाया है। इस आत्मा की एक समय की पर्याय है, वह भी जीव का परमार्थ स्वरूप नहीं है।

दया, दानादि के भाव निचली दशा में आते हैं, किंतु वह भूतार्थ जीवद्रव्य नहीं है; अथवा मैं जीव हूँ, ऐसा विकल्प तथा एक समय की पर्याय, वह जीव का वास्तविक स्वरूप नहीं है। द्रव्य, वह निश्चय और उसकी पर्याय, व्यवहार है। पुण्य-पापरूप भाव आस्रवतत्त्व है, औदयिकभाव है, उसे तो बाह्यतत्त्व-परद्रव्य कहा है; तदुपरांत धर्मरूप आंशिक निर्मल पर्याय जो संवर-निर्जरा एवं पूर्ण निर्मल ऐसी मोक्ष पर्याय, उसे भी यहाँ आत्मतत्त्व से बाह्य-परद्रव्य कहा है। भगवान आत्मा के आश्रय से होनेवाली अतीन्द्रिय आनंदरूप निर्मलपर्याय भी नित्य अंत:तत्त्व की अपेक्षा बाह्यतत्त्व, क्योंकि वह अनित्य, क्षणिक, एक अंश है, सारा आत्मा उतना नहीं है।

जिसप्रकार रास्ते पर चलता हुआ मुसाफिर वृक्ष की छाया में होकर गुजरता है, किंतु छायारूप वह नहीं होता, उसीप्रकार भगवान आत्मा त्रिकाल ज्ञाता, उसे मार्ग में औपशमिक, औदयिक, क्षायोपशमिक और क्षायिकभाव पर्याय में एक समय के स्वांगमात्र आते हैं किंतु उसरूप आत्मा हो जाये, ऐसा नहीं है। यह बात समझना दुर्लभ है, अंतर में ध्रुव चैतन्यतत्त्व को लक्ष में लेने की बात है। पर का करे, वह आत्मा नहीं है; पुण्य-पाप-रागादि करे, वह ज्ञायक आत्मा नहीं है। शुभराग हितकर है—करने योग्य है—ऐसा माने, वह आत्मा नहीं है; एक समय की निर्मल पर्याय, वह भी त्रिकाली एकरूप जीवतत्त्व नहीं है। एक समय की पर्याय भले अंतरतत्त्व में से आती है किंतु वह व्यवहार आत्मा है; नित्य एकरूप निश्चय आत्मा वह नहीं

है, इस दृष्टि से वह सामान्य जीवद्रव्य नहीं है। भगवान आत्मा नित्य चैतन्य निधान है, उसकी दृष्टि करने से उस परमस्वरूप की प्राप्ति / पहिचान होती है, उसका अनुभव करने पर, भेद भासित नहीं होता। धर्मी जीव गुणभेद-पर्यायभेद को जानता है किंतु ध्रुव सामान्य आत्मा उस भेदरूप भासित नहीं होता, यदि वर्तमान क्षणिक-अनित्य पर्याय धर्म में भेद-अनेकता बिलकुल न हो तो दृष्टि निर्मल करना, अभेद का आश्रय करना नहीं बनता। यहाँ तो निश्चयसम्यग्दर्शन का विषय क्या है, वही बताते हैं। वह निश्चय आत्मतत्त्व उपादेय है, इस अपेक्षा सात तत्त्व के भेद हेय है-बाह्य हैं। प्रथम ऐसा स्वलक्ष से निर्णय करना चाहिये। स्वद्रव्य-अंत:तत्त्व, ध्रुवतत्त्व का आश्रय करावे, वह धर्म कथा है। और जिस कथा में व्यवहार के भेद, सात तत्त्व के भेद, रागादिक को हेय न बताया हो, किंतु उनके आश्रय से लाभ बताया हो, वह कथा सम्यक्त्व और वीतरागता का नाश करनेवाली-विकथा है।

अरे! सम्यग्दर्शन की निर्मलदशा का भी ध्रुवतत्त्व में कहाँ स्पर्श है? वह एक समय का अंश वास्तव में ध्रुव को स्पर्श नहीं करता। भगवान आत्मा नित्य एकरूप चैतन्यमात्र है, उसे स्वभाव, स्वद्रव्य, अंत:तत्त्व कहा है। उसे ही उपादेय मानकर उसमें एकत्व की दृष्टि करना योग्य है। आत्मा में देहादि तो नहीं हैं, स्त्री, पुरुष, नपुंसक, रोग, निरोगदशा वे भी आत्मा नहीं हैं, वे तो भिन्न हैं किंतु पुण्य-पाप तथा संवर-निर्जरा और मोक्ष पर्याय भी एक समय के क्षणिक अंश होने से, अपने साथ नहीं रहते, तेरे नित्यस्वरूप के होकर यह साथ रहनेवाले नहीं हैं। अत: वह सब व्यवहारिकभाव आत्मा से बाह्य हैं। मैं उनसे त्रिकालीक भगवान भिन्न हूँ, मैं टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकस्वभाव हूँ, सम्यग्दृष्टि ज्ञानी को ऐसा शुद्धभाव भासित होता है और उसके अनुभव को सम्यग्दर्शन कहते हैं।

प्रश्न :—यह बात तो त्यागी बाबा बन जाये तब बनेगी?

उत्तर:—अरे! नित्य एकरूप तत्त्व को देख तो उसमें तू वास्तव में त्यागी बाबा है। परद्रव्य-क्षेत्रादि तो तेरे नहीं हैं; राग और तेरी निर्मल पर्याय भी तेरे ध्रुवरूप में नहीं है। परवस्तु के साथ तो तेरा कुछ संबंध नहीं है, किंतु अपने अंत:तत्त्व के आश्रय से होनेवाली निर्मल पर्याय के साथ भी निश्चय से तेरा संबंध नहीं है।

आचार्य कुन्दकुन्ददेव, नग्नदिगम्बर मुनि संवत् ४९ में पौन्नूरहिल दक्षिण में थे। महाविदेहक्षेत्र से साक्षात् सीमंधर तीर्थंकर परमात्मा विराजमान हैं, उनके पास गये थे और आठ

दिन तक साक्षात् दिव्यध्वनि सुनकर क्या लाये ? कि समयसारादि शास्त्रों की रचना की; उसमें मुख्य तत्त्व शुद्धभाव अधिकार का लाये हैं। यह तो शुद्ध अध्यात्म अमृत है, कथा-कहानी नहीं है। नित्य ध्रुव अपेक्षा सभी बाह्य तत्त्व हैं—हेय हैं; वास्तव में आदरणीय नहीं हैं; अजीवादि में सुख नहीं है, शुभराग भी आस्रवतत्त्व है, उसके आलंबन से शांति नहीं है किंतु प्रगट करने के लिये भी उपादेय नहीं है। संवर-निर्जरा और मोक्षपर्याय के आलंबन से शांति नहीं होगी, वह तो क्षणिक अंश है, बाह्य है, इसलिये हेय है। जिसप्रकार परद्रव्य में से अपनी पर्याय नहीं आती; उसीप्रकार तेरी पर्याय में से भी यर्थाथ की उत्पत्ति नहीं होती, इसलिये उनका आश्रय छुड़ाकर त्रैकालिक ध्रुवधाम का आश्रय कराया है; नित्य शुद्ध एकरूप चैतन्य सत्ता का आलंबन करने के लिये निश्चयदृष्टि में उसी को उपादेय कहा है; अन्य सब व्यवहारिकभाव क्षणिक होने से असत् और हेय-बाह्य कहे हैं। जो उन व्यवहारिक भावों के आलंबन से निर्मलता होने की श्रद्धा करे तो वह मिथ्यादृष्टि ही है। सम्यग्दृष्टि को पुण्य-पाप के भाव भयंकर जहरीले काले साँप के समान लगते हैं। मुनिदशा तो उनसे बहुत उच्च है।

यहाँ मुनिराज मुनिपद की महिमा बताते है कि कैसा है मुनिपरमेष्ठीपद ?—कि सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर के शिखामणि समान है; पुण्य को-इन्द्रपद को भी तृणवत् मानते हैं। मोहगर्भित वैराग्य नहीं है किंतु नित्य स्वभाव के लक्ष से पुण्य-पाप के विकल्प से भिन्न हुआ है, ऐसा जीव स्वयं सहज वैरागी है। स्वसन्मुखता में ही सहज वैराग्य आता है।

पंच महाव्रत पालन का राग मुनि का आता है, फिर भी दृष्टि में उस राग को भी विष मानते हैं, रागरहित शुद्धात्मा एक ही हमें आदरणीय है। स्वभाव संचेतन द्वारा तीन प्रकार के कषाय का अभाव है, अकषाय परमेश्वरपद है, वे मुनि कहते हैं कि हमारी दृष्टि राग की महिमा से दूर है, पाँच इन्द्रियों के विस्तार से पराङ्मुख, अतीन्द्रिय स्वभाव के सन्मुख, वस्त्र-पात्रादि परिग्रह से रहित निरंतर अतीन्द्रिय आनंद के विस्तार से भरपूर है। चैतन्य भगवान आत्मा ध्रुव, वह स्वद्रव्य है, उसी को उन्होंने सूक्ष्म दृष्टि द्वारा ग्रहण किया है। इसप्रकार जिसने त्रैकालिक शुद्धात्मा को ही उपादेय किया है, उसी को निर्मल श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र पर्याय प्रगट होती है, बढ़ती है और पूर्ण होती है।

जैनधर्म के प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव और अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर; —दोनों भगवंतों की खड्गासन वीतरागी मुद्रा कैसी शोभायमान लग रही है! मालूम है, कहाँ विराजमान हैं यह मूर्तियाँ? लंदन शहर के ब्रिटिश म्यूजियम में यह मूर्तियाँ विराजमान हैं। प्रतिवर्ष लाखों लोग इनके दर्शन करते हैं। ब्रिटिश शासन के अधिकारियों को अव्यक्तरूप से भी भारत के इस अमूल्य वैभव के प्रति आदरभाव जागृत हुआ होगा और वे इस वीतरागी निधान को अपने देश में ले गये होंगे।—सच ही है, वीतरागता किसे अच्छी नहीं लगेगी? इन भगवंतों की मुद्रा मौनरूप से भी वीतरागी मोक्षमार्ग का संदेश सारे जगत को दे रही है।

विश्वतत्त्वों का सत्यस्वरूप सम्यक् अनेकांत द्वारा बतलाकर सच्चा समाधान, एवं अपूर्व शांति का उपाय दर्शानेवाले—

सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

१	समयसार	(प्रेस में)
२	प्रवचनसार	४.००
३	समयसार कलश-टीका	२.७५
४	पंचास्तिकाय-संग्रह	३.५०
५	नियमसार	४.००
६	समयसार प्रवचन (भाग-४)	४.००
७	मुक्ति का मार्ग	०.५०
८	जैनसिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग-१	०.७५
	'' '' '' भाग-२	१.००
	'' '' '' भाग-३	०.५०
९	चिद्विलास	१.५०
१०	जैन बालपोथी	०.२५
११	समयसार पद्यानुवाद	०.२५
१२	द्रव्यसंग्रह	०.८५
१३	छहढाला (सचित्र)	१.००
१४	अध्यात्म-संदेश	१.५०
१५	नियमसार (हरिगीत)	०.२५
१६	धर्म के संबंध में अनेक भूलें	बिना मूल्य
१७	अष्ट-प्रवचन	१.५०
१८	मोक्षमार्गप्रकाशक (ढूंढारी भाषा में) (सस्ती ग्रंथमाला दिल्ली)	२.२५
१९	पण्डित टोडरमलजी स्मारिका	१.००
२०	अपूर्व अवसर-प्रवचन	१.५०
२१	बालबोध पाठमाला, भाग-१	०.४०
२२	बालबोध पाठमाला, भाग-२	०.५०
२३	बालबोध पाठमाला, भाग-३	०.५५
२४	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-१	०.५०
२५	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-२	०.६५
	पाँच पुस्तकों का कुल मूल्य	२.६०
२६	लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०.२५
२७	सन्मति संदेश (पूज्य श्री कानजीस्वामी विशेषांक)	०.५०
२८	मंगल तीर्थयात्रा (गुजराती-सचित्र)	६.००

प्राप्तिस्थान :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट,

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट सोनगढ़ के लिये प्रकाशक एवं मुद्रक :

मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)